UNIVERSAL LIBRARY
OU_186088
UNIVERSAL LIBRARY

उर्दू-साहित्य

का

सरल इतिहास

लेखक
प्रतापनारायण टंडन, एम० ए०, साहित्यरत्न

मू० २॥)

प्रकाशक
विद्यामंदिर
रानीकटरा, लखनऊ

पहली बार, ५००
१९५६
मू० २॥)

मुद्रक
विद्यामंदिर प्रेस,
लखनऊ

विषय-सूची

१. उर्दू-भाषा : एक ऐतिहासिक दृष्टि ५

[उर्दू और फारसी—६, उर्दू और हिंदी—१० ।]

२. उर्दू-भाषा की उत्पत्ति और विकास १५

३. उर्दू-साहित्य में प्रयुक्त छंद १७

४. उर्दू-काल का जन्म और उसका प्रारंभिक स्वरूप १६

५. उर्दू-काल का नया रूप २६

६. उर्दू-काव्य का स्वर्ण-युग ३५

७. उर्दू-साहित्य का केंद्र—लखनऊ के मशहूर शायरों की विशेषताएँ ४६

[नासिख—४६, नासिख परंपरा के कवि— बर्क—५२, बन्ह—५३, रश्क—५४, मुनीर—५४, आबाद—५५, मेहून—५६, वजीर—५६, आतिश—५७, आतिश परंपरा के कवि—रिंद—६१, सबा—६२, खलील—६२, नसीम—६३]

८. मर्सिया और उसका उर्दू साहित्य में स्थान ६४

[जमीर—६६, खलीक—६७, अनीस—६८, दबीर—७१]

९. उर्दू-नस्र (गद्य) का आरंभकाल ७५

१०. उर्दू-गद्य-साहित्य का विकास काल [illegible]

११. फोर्ट विलियम कालेज द्वारा उर्दू-सेवा ८२

१२. ईसाई पादरियों की उर्दू-सेवा ८५

१३. जानगिलक्राइस्ट की उर्दू सेवा ८७

१४. संक्षिप्त टिप्पणियाँ ९०

[रेख्ती—९०, गजल—९१, शेर—९३, काफिया-रदीफ—९४, कसीदा—९५, रुबाई—९५, मसनवी—९५, मुसद्दस—९६, यूसुफ-जुलेखा—९६, मंसूर—९७, मुहम्मद कुली कुतुब शाह—९८, आरजू—१००, वली मुहम्मद 'वली'—१०१, काजी महमूद बहरी—१०२, सिराज औरंगाबादी—१०२, शाह मुबारक आबरू—१०३, हातिम—१०४, फाइज—१०४, सौदा—१०५, हसन—१०६, जुरअत—१०७, मीर—१०८, जौक—१११, गालिब—११४, नवाब मिर्जा दाग—११८ आजाद—१२३, हाली—१२४, अकबर—१३२, हाली और अकबर की तुलना—१३८, सर शेख मुहम्मद इकबाल—१३९, जोश मलिहाबादी—१४२, 'सागर' निजामी—१४४, मजाज—१४५, चकबस्त—१४७, सीमाब—१४९, दानिश—१५१, बर्क—१५२, हाफिज—१५३, अख्तर शीरानी—१५५, जज्बी—१५६, माहिर लुधियानवी—१५७, जाकिर हुसेन साकिब—१५८, मौलाना हसरत—१५९ 'फानी'—१६१, जिगर—१६२, फिराक गोरखपुरी—१६४]

१५. उर्दू का नया गद्य-साहित्य १६५

—(:※:)—

उर्दू-साहित्य का सरल इतिहास

उर्दू भाषा : एक ऐतिहासिक दृष्टि

मानव अभिव्यक्ति का भूखा है। वह अपनी भावनाओं को दूसरों पर प्रकट करने की इच्छा रखता है। उसकी इसी इच्छा के फलस्वरूप भाषा का जन्म माना जाता है। जिस साधन द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है, उसे भाषा कहते हैं। भारतवर्ष का प्राचीनतम साहित्य संस्कृत में मिलता है। लेकिन यह विषय अभी विवादग्रस्त है कि यह रूप किस प्राचीनतम भाषा का है। मध्य एशिया से जब आर्य जाति पश्चिम और दक्षिण दिशाओं की ओर बढ़ने लगी तब—प्रारंभ में ही—उसके दो भाग हो गए। उनमें से एक भाग यूरोप की ओर बढ़ा और दूसरा पश्चिम-दक्षिण की ओर। इस दूसरे भाग का भी विभाजन ईरान पहुँचकर हो गया। उनमें से एक भाग वहीं निवास करने लगा और दूसरा भारतवर्ष चला आया। यह अनुमान लगाया जाता कि उनकी जो मूल भाषा थी, वह उनके साथ ही साथ, उन-उन स्थानों को गई, जहाँ-जहाँ वे

गए और स्थान और काल की भिन्नता के अनुसार उनमें अनेक परिवर्तन होते गए। यही कारण है कि आज उससे विकसित रूपों में काफी भिन्नता है। ईरानी वंश की भाषाओं में मीडी, पहलवी, फारसी आदि मुख्य हैं। आर्यों की जो मूल भाषा भारतवर्ष में आई, वह परिष्कृत होते-होते संस्कृत हो गई और बाद में नियमों में बँध जाने पर, यही साहित्यिक भाषा का कार्य भी यह देने लगी अन्यथा, जैसा कि स्पष्ट है प्रारंभिक रूप में यह मात्र बोलचाल की भाषा ही थी। उस व्यवहार में आने वाली प्राचीन भाषा से प्राकृत भाषा का रूप भी समय पर विकसित हुआ, जो बाद में अपभ्रंश कहलाया। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों में इसके परिवर्तन विभिन्न रूपों में हो रहे थे। इन परिवर्तनों का फल यह हुआ कि कुछ समय पश्चात् वह भाषा कई अन्य नए प्रांतीय रूपों में विकसित हुई। इन रूपों में से कुछ हिंदी, पंजाबी, बँगला, गुजराती तथा मराठी आदि हैं। आर्यों की मूल भाषा के इन्हीं दो विभागों—ईरानी और भारतीय—की वंशधर फारसी और हिंदी के मेल से उर्दू भाषा का संगठन हुआ है। भिन्न-भिन्न आर्य भाषाओं में क्या पारस्परिक एकता है, यह नीचे की तालिका में दिए गए कुछ शब्दों से समझा जा सकता है—

संस्कृत	हिंदी	फारसी	उर्दू	लैटिन	अँग्रेजी
पितृ	पिता	पिदर	पिदर	पेटर	फादर

मातृ	माता	मादर	मादर माँ	मेटर	मदर
भ्रातृ	भ्राता, भाई	बिरादर	बिरादर, भाई	फ्रेटर	ब्रदर
द्वि, द्वौ	दो	दू	दो	डुओ	टू
अस्मि	हूँ	अम	हूँ	[illegible]	एक

संसार की प्रत्येक भाषा का नामकरण उस देश या जाति के नाम पर होता है जिसकी वह बोली है। जिन भाषाओं का नामकरण इस स्वाभाविक नियम के विरुद्ध है, वे किसी विशेष कारण से, दो भिन्न जातियों के संपर्क से ही उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे उर्दू। किसी भाषा का उत्पत्ति काल निश्चित रूप से इस प्रकार नहीं बताया जा सकता कि अमुक तिथि या समय विशेष से इस भाषा का प्रचार हुआ है। भाषाएँ किसी देश या जाति की संपत्ति होती हैं। अपने तत्कालीन रूप के पूर्व वे किसी भाषा का विकृत रूपांतर होती हैं और यह परिवर्तन बहुत समय के बीच में होता हुआ ही नया रूप धारण करता है। इसलिए हम यह कभी नहीं कह सकते कि अमुक भाषा अमुक भाषा से अमुक संवत् में उत्पन्न हुई है। परंतु वह भाषा जो दो भिन्न भाषा-भाषी जातियों के संपर्क से संगठित हो, उसका समय निश्चित किया जा सकता है। उर्दू की उत्पत्ति तथा उसके उत्पत्तिकाल के विषय में कुछ निश्चित करने के पहले यह जानना आवश्यक है कि हिंदू और मुसलमानों का संपर्क कब से प्रारंभ हुआ है। साथ ही ध्यान रखना होगा कि

उर्दू भाषा की उत्पत्ति हिंदुओं की उस भाषा के संपर्क से हुई है जिसे 'खड़ी बोली' कहते हैं। भारतववर्ष जैसे विशाल देश में, प्रत्येक काल में अनेकानेक भाषाएँ व्यवहृत होती रही हैं, तथा सभी में फारसी-अरबी का मेल यदि कर दिया जाए, तो उर्दू भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। केवल हिंदी के उस रूप से, जो मुसलमान सैनिकों के पड़ावों में और मुगल शासकों के महलों के आसपास बोली जाती थी, उन नवागंतुकों की भाषा के मिश्रण से उर्दू का रूप गठित हुआ था। यह कहना कि ब्रजभाषा व फारसी के मिश्रण से उर्दू बनी है, उतना ही भ्रांतिपूर्ण है, जितना यह कहना कि वह गुजराती या राजस्थानी के मिश्रण से बनी है।

सन् ७१२ में सिंध पर मुसलमानों का सर्वप्रथम आक्रमण हुआ, लेकिन इस आक्रमण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके अनंतर लगभग ढाई सौ वर्ष बाद उत्तर-पश्चिम से बराबर आक्रमण होने लगे और क्रमशः मुसलमानों के पैर भारत में जमते गए। यहाँ तक कि सन् ११९२ में दिल्ली पर मुहम्मद गोरी का अधिकार हो गया। इन आक्रमणकारियों के अतिरिक्त तथा पहले इन दो जातियों का संपर्क व्यवसाय आदि के लिए तथा पड़ोसी होने के कारण भी होता रहा था। इन दो जातियों का संपर्क अधिकतर उत्तरी भारत में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेष रूप से हुआ और इन दोनों के विचार

विनिमय के लिए एक व्यावहारिक भाषा इसी समय के आसपास संगठित हुई होगी।

उर्दू और फारसी

कुछ लोगों का कथन है कि उर्दू की उत्पत्ति फारसी से हुई है, क्योंकि वह उसी भाषा के बोलनेवालों के पड़ावों में संगठित हुई है। परंतु यह निरा भ्रम है, जो वर्तमान काल की उर्दू में फारसी शब्दों का बाहुल्य, फारसी लिपि तथा फारसी छंद शास्त्र के प्रयोग देखने से फैला है। उर्दू की उत्पत्ति, जब वह केवल व्यावहारिक भाषा मात्र थी, विचारों के आदान-प्रदान में सुगमता लाने के लिए हुई थी। जो कार्य सहज ही में हो सके, उसे मनुष्य स्वभावतया ग्रहण करता है। फारसी, तुर्की आदि हिंदी से अधिक जटिल थीं, इसलिए हिंदुओं में इन भाषाओं के सीखने के शताब्दियों पहले मुसलमानों ने हिंदी में बोलना सीख लिया था। वे इसमें कविता भी करने लगे थे। यह हिंदी दिल्ली तथा मेरठ के आसपास बोली जानेवाली भाषा थी, जिसका सच्चा तथा प्राचीन स्वरूप एक मुसलमान द्वारा ही आज सब पर व्यक्त है, नहीं तो कुछ लोग तो उसे केवल सौ सवा सौ वर्ष ही प्राचीन मान बैठे थे। इसी हिंदी में फारसी आदि भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होने लगे और फिर यह मिश्रित भाषा ही काफी समय के बाद उर्दू कहलाई। यह व्यावहारिक भाषा अपने उत्पत्तिकाल से लगभग पाँच शताब्दी बाद तक

इसी रूप में रही और तब तक यह साहित्यिक रूप धारण करने में असमर्थ रही।

उर्दू और हिंदी

खुसरो और कबीर की कविता के उदाहरणों के रहते हुए भी अगर कोई यह कहता है कि हमारी उर्दू जबान ब्रजभाषा से निकली है, सर्वथा निराधार है। उर्दू कभी किसी भाषा से नहीं निकली। हिंदी का ही नाम उर्दू रख लिया गया है। अगर इसका नाम उर्दू न रखकर मुसलमानी हिंदी रखा जाता तो अधिक सार्थक होता।

हर भाषा तीन तरह के शब्दों से बनती है—(१)—संज्ञा, (२)—क्रिया और (३) अव्यय। उर्दू में क्रियाएँ सब हिंदी की हैं। अव्यय भी कुछ को छोड़कर शेष हिंदी के ही हैं। हाँ, संज्ञा में हिंदी, अरबी, फारसी, तुर्की और साथ ही अँग्रेजी, पुर्तगाली और फ्रांसीसी शब्द भी मिले हुए हैं। अतएव केवल संज्ञा शब्दों के आधार पर ही कोई भाषा नई नहीं कही जा सकती।

और उर्दू शब्द का अर्थ भी लश्कर का बाजार है। केवल उर्दू शब्द से किसी भाषा-विशेष का बोध नहीं होता। उर्दू के मशहूर शायर 'मीर' तक इसको 'जबाने उर्दू' यानी लश्कर के बाजार की बोली कहते थे।

यों तो कालेज और यूनिवर्सिटियों में आजकल जो हिंदी बोली जाती है उसमें आधे के लगभग शब्द अँग्रेजी संज्ञाओं के होते हैं। उदाहरण के लिए अगर उर्दू-फारसी पढ़ा हुआ एक मुसलमान कहता है—'मैं कलकत्ते से रवाना हुआ और जुमा को सबेरे की गाड़ी से इलाहाबाद पहुँच गया। मरीज को देखा, उसके जीने की उम्मीद नहीं।' तो इसी को एक ग्रेजुएट, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान इस तरह बोलता है—'मैं कलकटा मे चला, फ्राइडे को मार्निङ्ग की ट्रेन से अलाहाबेड पहुँचा। पेशेंट को देखा, वह होपलेस कंडिशन में है।'

यदि उक्त मुसलमान की भाषा का एक अलग नाम उर्दू रखा जायगा तो उस ग्रेजुएट की भाषा का क्या नाम होगा? हम तो दोनों को हिंदी कहेंगे। कोई अधिक बाल खींचने को कहेगा तो हम पहली को मुसलमानी हिंदी और दूसरी को अँग्रेजी हिंदी कहेंगे। पर हिंदी से अलग हम उसे तब तक नहीं मानेंगे जब तक उसकी क्रिया, कारक, लिंग और वचन भिन्न होंगे। जब हिंदी-उर्दू का व्याकरण एक है, तब उर्दू अलग स्वतंत्र भाषा कैसे कहला सकती है?

हिंदी और उर्दू में केवल इतना ही अंतर है कि हिंदी देवनागरी लिपि लिखी जाती है और उसमें संस्कृत के शब्द अधिक रहते हैं और उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी-फारसी के शब्दों की अधिकता रहती है। गुजराती

के भी दो रूप हैं पर नाम एक ही है। यही हिंदी में भी होना चाहिए।

जब मुसलमान भारतवर्ष में आकर बसने लगे, तब उन्हें दिल्ली के आसपास की चलती भाषा—खड़ी बोली—से काम पड़ा था न कि काव्य या साहित्य की भाषा से। जब पठानों ने दिल्ली को राजधानी बनाया, तब वहाँ की बोली उन्हें ग्रहण करनी पड़ी। पठान सुलतानों के सिक्कों पर हिंदी लिपि में ही नाम दिए जाते थे। खुसरो ने उसी बोली में बहुत सी पहेलियाँ और पद कहे थे और उनमें से कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें इस बोली और फारसी का मिश्रण था, पर कहीं-कहीं परंपरागत काव्य भाषा अर्थात् व्रजभाषा का भी पुट झलक जाता था। उर्दू के पुराने शायर बहुत दिनों तक इस परंपरागत काव्यभाषा से अपना पीछा नहीं छुड़ा सके थे। व्रजभाषा के इसी पुट को देखकर पूर्वोक्त भ्रांति उर्दू भाषा के इतिहास लेखकों में फैल गई थी।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति, व्यवहार और बोलचाल के लिए हुई थी और लगभग पाँच शताब्दियों तक वह केवल इसी रूप में रही। फारसी भाषा के क्लिष्ट और जटिल होने से भारतवासी मुसलमानों ने हिंदी को ही मातृभाषा का स्थान देना आरंभ किया। इस हिंदी में फारसी के शब्द अधिक रहने लगे। साथ ही फारसी के शब्द हिंदी की काव्य-भाषा में स्थान पाने लगे।

मुसलमान कवियों ने हिंदी भाषा में अनेक अमूल्य ग्रंथ रचकर हिंदी-साहित्य के भंडार की पूर्ति में सहायता दी। कबीर, नानक, सूर, तुलसी आदि से लेकर आधुनिक कवि तक फारसी शब्द कविता में लाते रहे, क्योंकि व्यवहार में आने के कारण उनका उपयोग अटल हो गया था। खुसरो, जायसी, रहीम, रसखान आदि मुसलमान कविगण हिंदी में बहुत प्रसिद्ध हो गए हैं। इससे ज्ञात होता है कि उर्दू की मौखिक अवस्था बहुत अच्छी थी। कुछ अँग्रेज विद्वानों का मत है कि उर्दू में फारसी शब्दों की प्रचुरता का कारण हिंदू ही हैं, जिन्होंने फारसी शिक्षा प्राप्त कर ली थी। कुछ अंशों में यह बात ठीक भी है। आज कल भी अँग्रेजी के एम० ए० और बी० ए० के विद्यार्थी हिंदी भाषा में अँग्रेजी शब्दों का व्यवहार बढ़ा रहे हैं।

उर्दू नाम की हिंदी जब तक देवनागरी लिपि में लिखी जाती रही और उनकी वाक्य-योजना हिंदी व्याकरण के अनुसार रही, तब तक वह नाममात्र ही को पृथक् कही जा सकती थी। परंतु जब वह फारसी लिपि में और फारसी भाषा के नियमानुसार कुछ परिवर्तित वाक्य-योजना के साथ लिखी जाने लगी अर्थात इस रूप में उसकी साहित्यिक अवस्था का आरंभ हुआ, तब वह वास्तव में एक पृथक और नई भाषा कही जाने योग्य हुई। उर्दू की वाक्य-रचना में बहुधा विशेष्य विशेषण के पहले आता है और फारसी संबंधवाचक सर्वनाम का प्रयोग

होता है। शब्दों का मुअर्रब (अरबी रूप) और मुफर्रस (फारसी रूप) भी काम में आने लगा। विदेशी शब्दों का अधिकता से प्रयोग होने लगा और उर्दू एक नया स्वांग धारण कर नई भाषा बन बैठी।

उर्दू में ठेठ शब्दों की भरमार है। आधुनिक हिंदी के मुकाबले में खड़ी बोली या पश्चिमी हिंदी के वाक्यों का साँचा और पश्चिमी हिंदी की शैली, उसका स्वाभाविक रूप, उसकी ऊँची, ऊँची मिसालें, उसका सुलझा और सँवरा रूप उर्दू में मिलता है। मगर उर्दू की यह विशेषता कुछ ही दिनों तक उर्दू की विशेषता रहेगी। जहाँ हिंदीवालों की आँखें खुलीं कि उर्दूवालों की यह विशेषता वे स्वयं अंगीकृत कर लेंगे।

निस्संदेह उर्दू शैली में जहाँ एक ओर विदेशीपन है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें अस्वाभाविकता आ गई, वहाँ दूसरी ओर ठेठ शब्दों को ग्रहण करके उनके प्रयोग द्वारा विचित्र सौंदर्य-सृष्टि करने की प्रवृत्ति भी है। ऐसी अवस्था में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उर्दू शैली के एक अंश में जीवन के अधिक कीटाणु हैं। भाषा की सफाई, भावों की बारीकी देखने योग्य है, उर्दू कवियों को भाषा पर पूर्ण अधिकार है। जीवन के प्रचलित मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने कीचड़ों में से कमल विकसित कर दिया है। भाषा में कहीं कृत्रिमता नहीं है, सरलता है, स्वाभाविकता है।

उर्दू का भविष्य आशापूर्ण दिखाई देता है। ऐसा जान पड़ता है कि थोड़े ही समय में उर्दू की पुरानी आशिकाना शायरी इतिहास ग्रंथ में पड़ जाएगी। उर्दू को वह गौरव प्राप्त होगा जो आत्मा को परमात्मा में, बूँद को समुद्र में मिलने में होता है, अर्थात् उर्दू के हिंदी में मिल जाने की संभावना है। यह संभावना इसलिए जान पड़ती है कि अब हिंदी में उर्दू के बहुत से शब्द व्यवहृत होने लगे हैं। उर्दू के नए शायर अब सरल से सरल बोलचाल की भाषा में प्रशंसनीय शायरी करने लगे हैं। इसी प्रकार यदि हिंदी वाले उर्दू के सब रोजमर्रा के इस्तेमाली शब्दों को अपनाकर हिंदी का भंडार भर लें तो उर्दू अलग नहीं रह सकती। दोनों आपसे आप एक हो जाएँगी और हिंदू-मुसलमानों के वैमनस्य की एक बड़ी दीवार ढह जाएगी।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति और विकास

उर्दू भाषा की उत्पत्ति और नाम के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोग इसे फारसी की एक शाखा समझते हैं तथा कुछ हिंदी की। जो लोग इसे फारसी की शाखा समझते हैं, वे मुख्यतयः दो बातों पर जोर देते हैं। एक तो यह कि उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है, और दूसरे यह कि इसमें फारसी भाषा के शब्द बड़ी संख्या में मिलते हैं। तथा जो लोग इसे हिंदी भाषा की एक शाखा समझते हैं, वे इसका

संबंध खड़ी बोली से बताते हैं। इस वर्ग के लोग उर्दू भाषा के व्याकरण तथा शब्द-समूह आदि की हिंदी से एकता दिखाते हुए अपने कथन की पुष्टि करने का प्रयत्न करते हैं। जैसा की हम प्रश्न संख्या १ के उत्तर में संकेत कर चुके हैं कि उर्दू में क्रियाएँ आदि प्रायः हिंदी की हैं तथा अव्यय भी। हाँ, संज्ञा में विभिन्न भाषाओं के शब्द हैं, जिनमें हिंदी, अरबी, फारसी, अँग्रेजी आदि भाषाएँ मुख्य हैं।

हम यह बता चुके हैं कि सामान्यतयः उर्दू शब्द का प्रयोग कब से प्रारंभ हुआ और किस समय से इसे एक स्वतंत्र भाषा कहा जाने लगा। उर्दू का जन्म-स्थान पंजाब माना जाता है। अपने प्रारंभिक रूप में यह वहीं घोषित हुई। लेकिन इसका वास्तविक विकास दिल्ली में ही हुआ। जैसा कि हम कह चुके हैं उर्दू की उत्पत्ति प्रारंभ में एक व्यावहारिक भाषा के रूप में हुई थी और इसे कई सौ वर्षों तक इसी स्थिति में रहना पड़ा, यानी यह साधारण बोलचाल की भाषा ही बनी रही। बाद में शाब्दिक विकास तथा व्याकरणिक पुष्टता आने पर यह साहित्यिक भाषा का स्थान भी ग्रहण कर सकी।

उर्दू भाषा के लिए प्रारंभ में 'रेख्ता' शब्द का प्रयोग किया जाता था। अर्थात् अपने प्रारंभिक रूप में यह रेख्ता के नाम से पुकारी जाती थी। कुछ काल तक इस भाषा का प्रयोग

साहित्य में भी हुआ था। लेकिन बाद में धीरे-धीरे इसे उर्दू कहा जाने लगा, और तब से प्रायः इस भाषा के लिए उर्दू शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।

उर्दू साहित्य में प्रयुक्त छंद

उर्दू भाषा का छंद शास्त्र हिंदी अथवा संस्कृत पर आधारित न होकर अरबी व फारसी पर आधारित है। उर्दू में प्रचलित छंदों की संख्या भी काफी है। इन छंदों में उन अक्षरों की गणना नहीं होती है जो उच्चारण में नहीं आते हैं। हिंदी 'गण' के लिए उर्दू में 'रुकन' शब्द है। छंद को 'बैत' तथा उसके अंश को 'मिसरा' कहा जाता है। साधारणतयः उर्दू में निम्न-लिखित छंद हैं—

१. नज़्म—नज़्म का साधारण अर्थ कविता होता है। लेकिन उर्दू में गज़ल को इसके अंतर्गत नहीं माना जाता।

२. गज़ल—गजल शब्द अरबी भाषा का है, जिसका साधारण अर्थ स्त्री से वार्तालाप करना है। इसमें शृंगार और प्रेम के अतिरिक्त अन्य विषयों आदि का भी समावेश रहता है। देश-प्रेम, दर्शन, धर्म, आदि विषयों पर भी अनेक गजलें लिखी गई हैं, जो बहुत सुंदर हैं। गजल में प्रायः पाँच से लेकर ग्यारह तक शेर रहते हैं, जिनमें पहले को 'मतला' और आखिरी को 'मकता' कहते हैं।

३. शेर—शेर में दो पंक्तियाँ होती हैं, जिनमें बराबर-बराबर मात्राएँ रहती हैं। अलग-अलग ये पंक्तियाँ 'मिसरा' कहलाती है। जो छंद तीन पंक्तियों से बनता है उसे मुसल्लस जो चार से बनता है, उसे मुरब्बा, पाँच से उसे मुखम्मस और जो छै से बनता है, उसे मुसद्दस कहते हैं।

४. कसीदा—कसीदा में प्रायः किसी महापुरुष की प्रशंसा की जाती है। इसमें जो शेर मुख्य विषय से संबंधित नहीं होते, उनका भी किस न किसी रूप में उनसे संबंध रहना आवश्यक है।

५. मसनवी—मसनवी प्रायः किसी लंबी कविता को कहते हैं। इसमें प्रायः युद्ध और प्रेम की लंबी कथाएँ प्रबंधात्मक रूप में लिखी जाती हैं।

६. मर्सिया—मर्सिया शोक-गीतों कहते है, जो करुण रस से पूर्ण हो। इसमें प्रायः किसी दिवंगत आत्मा का गुण-गान रहता है। उर्दू में जो मर्सिए लिखे गए हैं, उनमें कर्बला के बलिदान की कथा ही प्रायः कही गई है।

७. हज्व—हज्व में प्रायः किसी समाज या व्यक्ति की निंदा की जाती है।

८. रुबाई—इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं। इन पंक्तियों में प्रायः एक ही विचार प्रकट किया जाता है। इसमें नीति संबंधी बातें भी कही जाती हैं।

९. किता—यह रुबाई से मिलता जुलता होता है। इसमें प्रायः दो शेर होते हैं।

१०. दीवान—गजलों के संग्रह को दीवान कहते हैं। यों किसी कवि की समस्त रचनाओं को कुल्लियात कहते हैं। इसीलिए साधारणतयः इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग जाता है।

१२. तजकिरा—तजकिरा ऐसी पुस्तक को कहते है, जिसमें कवियों की संक्षिप्त जीवनी रहती है, और साथ ही उनकी रचनाओं के उदाहरण भी दिये जाते हैं।

फर्द—किसी गजल के एक शेर को कहते हैं।

उर्दू काल का जन्म और उसका प्रारंभिक स्वरूप

उर्दू के साहित्यिक पुनर्जन्म के संबंध में भी विद्वानों में काफी मतभेद है। ग्यारहवीं विक्रमी शताब्दी के अन्त में साद के पुत्र मसऊद ने रेख्ता में एक काव्य-संग्रह बनाया और तेरहवीं शताब्दी के अंत में खुसरो ने काव्य-रचना की। इसी समय और भी कई मुसलमान कवियों ने श्रेष्ठ साहित्य रचा। ये रचनाएँ हिंदी छंदशास्त्र के अनुसर हिंदी भाषा में प्रणीत हैं और इनके रचनाकाल को उर्दू का साहित्यिक आरंभ मानना नितांत भ्रममूलक है। कवि के जाति-धर्म के भेद के अनुसार उसकी कविता का नामकरण नहीं होता। हिंदी की रचनाओं

में फारसी या अँग्रेजी के केवल कुछ शब्द आ जाने से उसकी भाषा उर्दू या अँग्रेजी नहीं हो सकती। उर्दू और हिंदी साहित्य की विभिन्नता का निदर्शक उनका व्याकरण और छंद शास्त्र है। इसलिए हिंदी में फारसी शब्दों का कब प्रयोग होने लगा था या हिंदी फारसी लिपि में कब से लिखी जाने लगी थी आदि प्रश्नों का उत्तर उर्दू के साहित्यिक प्रारंभ का द्योतक नहीं है। इसके लिए तो यही जानना चाहिए कि किस समय फारसी छंदशास्त्र के अनुसार हिंदी भाषा में पहले पद की रचना हुई, चाहे उसमें फारसी का शब्द मिला हो, या नहीं। वही रचना काल उर्दू साहित्य का आरंभ विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी का मध्य है, जब कि गोलकुंडा के सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने फारसी छंदशास्त्र के अनुसार हिंदी में कविता की थी।

पहले पहल भारत में आने पर मुसलमान आक्रमणकारी सैनिक पड़ावों में ही बसते थे और वहीं के बाजारों में उर्दू भाषा का जन्म हुआ था। तुर्की भाषा में पड़ावों के बाजार को उर्दू कहते हैं, इसी से उर्दू की भाषा उर्दू कही जाने लगी। यह नामकरण प्राचीन नहीं है और काफी समय व्यतीत हो जाने के बाद इस भाषा के लिए किया गया था। उर्दू नाम की यह व्यावहारिक भाषा लगभग पाँच शताब्दी तक इसी रूप में रही और विद्वानों ने इसे साहित्य-रचना के लिए नहीं अपनाया।

इसे साहित्यिक भाषा होने का गौरव शायद ही प्राप्त होता, यदि यह दक्षिण की यात्रा न कर आती। उर्दू के साहित्य का आरंभ दक्षिण में हुआ। जब उर्दू नाम की हिंदी दक्षिण में आई और साहित्यक भाषा का रूप धारण करने लगी, तब द्राविड़ी भाषाएँ एकदम अजनबी-सी थीं। इस कारण उसने उनसे कोई संबंध नहीं रखा, लेकिन फारसी का उस पर काफी प्रभाव पड़े बिना न रह सका। यही कारण है कि एक तो फारसी आर्य भाषा है और दूसरे शताब्दियों से दोनों का साथ था। इस प्रकार उत्तर से लाई गई उस छोटी सी धारा में फारसी की प्रबल उलटी धारा का जल नहर काटकर मिलाया गया जिससे उसकी धारा भी उलटी बह चली। फारसी छंदशास्त्र के नियमों से बनी हुई कविता में फारसी ही के उपमान, उपमेय, विचार कथाएँ आदि भर दी गयीं और उर्दू नाम की हिंदी वस्तुतः उर्दू हो गई। उर्दू और हिंदी के वांर्धक्य का मुख्य कारण वस्तुतः फारसी छंदशास्त्र तथा अभारतीय प्रसंग वर्णन है। आरंभ में दक्षिणी भाषा में कुछ फारसी शब्द मिश्रित करके यह काव्य भाषा बनाई गई थी, लेकिन वह जब दिल्ली पहुँची तब वहाँ की खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। जब इस भाषा की काव्य रचना फारसी छंदशास्त्र के नियमों के अनुसार होने लगी तब यह भाषा उर्दू की काव्य भाषा कही जाने लगी।

सभी भाषाओं के साहित्य का आरंभ या उसकी पुष्टि

राज्याश्रय से हुई है और इसी प्रकार उर्दू की मौखिक या व्यावहारिक अवस्था का आरंभ दक्षिण के दरबारों में हुआ। प्रसिद्ध मुगल सम्राट अकबर के समय तक इस व्यावहारिक भाषा का सूत्रपात हुए पाँच शताब्दियाँ चुकी थीं, लेकिन उसके स्वरूप में अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। विद्वानों या राज-दरबारों में उसकी पहुँच नहीं थी। उस समय तक किसी को आशंका भी नहीं थी कि वह कभी इस उन्नत अवस्था तक पहुँचेगी, परंतु दक्षिण के प्रभाव के फलस्वरूप उसे एक साहित्यिक भाषा कहलाने का गौरव प्राप्त हो गया। इस भाषा का आरंभ कविता ही से होता हुआ देखा जाता है। इसमें एक विशेषता यह थी कि यह काव्य-शास्त्र के सभी सामान से सुसज्जित होकर एकाएक भारतीय रंगमंच पर आ पहुँची।

उर्दू साहित्य का आरंभ दक्षिण के गोलकुण्डा और बीजापुर के कुतुबशाही और आदिलशाही दरबारों के आश्रय में हुआ था। यहाँ के सुलतान केवल कवियों के आश्रयदाता ही नहीं थे, वरन् स्वयं भी कविता रचते थे। यहाँ के उर्दू कवियों की काव्यभाषा हिंदी थी पर उसमें फारसी अरबी और तुर्की शब्द तथा दक्षिणी मुहावरे मिले हुए थे और यहाँ के कवियों ने हिंदी आख्यायिकाओं तथा उपमाओं को भी अपनी कविता में स्थान दिया था। जब औरंगजेब ने राज्यों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तो साथ ही ये साहित्यिक क्षेत्र भी नष्ट हो गए।

उर्दू की सारी प्रारंभिक कविता प्रायः प्रेम और विरह के रंग में रँगी हुई है, जिसका कारण यह है कि इन भावनाओं की कविता का फारसी में भी बाहुल्य है। इस प्रकार भावों की कमी या मौलिकता की हीनता से कथन-शैली और अलंकारों में ही नवीनता लाई गई तथा उर्दू का अलंकार-शास्त्र परिपक्व हो गया। इसका कारण यही है कि जब उन भावों पर, जिन पर सैकड़ों कवि अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दे चुके हों, फिर से कविता की जाए, तब उसमें कुछ मौलिकता लाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके कहने के ढंग में कुछ नवीनता लाई जाए। इसलिए बातों का फेर-फार, अनोखी उपमाएँ अनुप्रास और श्लेष का उर्दू कविता में अधिक प्रयोग रहता था। उर्दू कविता में भावों के इसी अभाव से उनके अनुवादों में चमत्कार घटने नहीं पाता।

उर्दू कोई स्वतंत्रता भाषा नहीं, वह शैली मात्र है, जो भारतीय राष्ट्रीयता के दुर्दिन में देश भाषा पर आरोपित हो गई थी। उर्दू-शैली के भारत के लिए अप्राकृतिक होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१)—अरबी फारसी के अप्रचलित शब्द-प्रयोग की बाढ़ जो विशेष रुचि रखने वाले मुसलमानों और कुछ हिंदुओं को भले ही प्रिय हो, किंतु अधिकांश भारतीय जनता उसे हृदयंगम नहीं कर सकती।

(२)—लौकिक प्रेम के आलंबन स्वरूप नायक नायिका संबंधी आदर्श।

(३)—काव्य-चमत्कार की सृष्टि में सहायक रूपकों, उपमाओं और आख्यानों, पक्षियों, फूलों आदि के लिए अरब और फारस की ओर दृष्टि निक्षेप।

उर्दू काव्य ने अपना प्रेमपात्र संबंधी आदर्श भारतीय संस्कृति से नहीं लिया है।

उर्दू कविताओं में इश्क-हकीकी अर्थात् अलौकिक प्रेम की तलाश के लिए कोई गुंजाइश नहीं है साथ ही इश्क मजीजी (अलौकिक प्रेम) दृष्टि से भी इनका प्रवाह एक अप्राकृतिक सौंदर्य को ग्रहण करने की ओर है। भारतीय साहित्य ने लौकिक और अलौकिक दोनों ही प्रकार के प्रेम सौंदर्य की जो व्याख्या सुन्दर ढंग से की है उसकी तुलना में उर्दू कवियों का उक्त प्रयत्न अस्वस्थ मस्तिष्क का अरुचिकर चमत्कार ही माना जाएगा। जो हो, भारतीय साहित्य इस विदेशी तत्व को ग्रहण करके विकास की ओर नहीं, अधःपतन की ओर ही अग्रसर होगा।

तृतीय विशेषता में निम्नलिखित बातों का भी समावेश हो सकता है—

(१)—विदेशी छंदों का प्रयोग।

(२)—आख्यानों का प्रयोग और जीवन के निषेधात्मक

तत्व की अभिव्यक्ति के लिए शैतान के उपयोग के रूप में विदेशी दर्शन का आरोप।

(३)—विदेशी फूलों, पक्षियों आदि का उपयोग।

(४)—ब्राह्मण और मूर्ति की व्याख्या।

इस प्रकार आँखों के सामने उपस्थित दृश्यों के बदले सुनी हुई बातों का वर्णन कर वास्तविकता का संहार किया गया। एक ही बात को बार-बार दुहराने से मौलिकता न रहकर बागाडंबर रह गया। नए नए भावों, अनुभवों से अद्भुत कल्पना की नई-नई उड़ानों तथा कवि की प्रतिभा की स्ववच्छंदता के नमूने कहाँ रहे ? प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण की तौबा ले ली गई और क्यों न लें ? फारस जाकर निरीक्षण करना कष्ट साध्य और वहाँ की नदी तथा पर्वतादि का यहाँ आना असाध्य। बस जो कुछ पूर्ववर्ती फारसी के कवि कह गये, वही सच्चा मंत्र। यही कारण है कि इस युग की कविता में एक ही प्रकार के भावों की पुनरावृत्ति बराबर मिलती, और एक ही भाव, कथन, शैली के उलट-फेर सुनते-सुनते जी ऊब उठता है।

पूर्ववर्ती भारतीय कवियों ने कवित्त, सवैया, चौपाई, आदि आदि देशी छंदों से ही काम लिया। जहाँ तक आख्यानों का संबंध है, उन्होंने भारतीय जनता में प्रचलित सामग्री जैसे चौपाई का ही प्रयोग किया है, लेकिन देशी भाषा में अरबी, फारसी के शब्दों का मिश्रण करने के अनंतर परवर्ती मुसलमान

कवियों ने देशी छंदों का परित्याग करके अरबी-फारसी छंदों का व्यवहार प्रचलित किया। इन छंदों में कोई विशेष सुविधा हो, सो बात नहीं। हाँ, इनके कारण अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग में और भी अधिकता हुई। क्योंकि शब्दों का प्रवाह भी भाषा के स्वरूप पर प्रभाव डाला करता है।

अरबी-फारसी के विदेशी छंदों में कितनी कृत्रिमता है, यह कहने की जरूरत नहीं और उनके प्रवाह को अनुकूल बनाने के लिए शायरों ने शब्दों को काफी तोड़ा-मरोड़ा भी है। इस प्रकार की अनुकरण प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि परवर्ती कवियों को दीपक जलाना, भारतीय कोयल आदि की कूक सुनना अच्छा नहीं लगा। वे शमा जलाने लगे और बुलबुल का गीत सुनाने लगे। राष्ट्रीय कवि चकबस्त भी उर्दू काव्य-शैली के इस रूढ़ि प्रयोग को न तोड़ सके और गाने लगे—

'बुलबुल को गुल मुबारक, गुल को चमन मुबारक !'

उर्दू काव्य का नया युग

मुगल साम्राज्य की अवनति का आरंभ प्रायः औरंगजेब की मृत्यु से माना जाता है, परंतु वास्तव में इसका आरंभ उसी समय से हो जाता है, जब औरंगजेब ने दक्षिण की यात्रा की थी। औरंगजेब के दक्षिण पहुँचने पर और वहीं मुगल-साम्राज्य की सारी शक्ति के अपव्यय कर देने पर शक्तिहीन दिल्ली नष्टप्राय हो गई। उसकी मृत्यु पर भ्रातृयुद्धों

ने उसे और भी क्षीण कर दिया था। जिस समय दक्षिण की सौगात 'वली' का दीवान (काव्य) दिल्ली पहुँचा, उस समय राजनीति से अनभिज्ञ, पर रंगीले सम्राट तथा उसके दरबारियों ने इस मनोरंजन की सामग्री को हाथों हाथ लिया और तलवार मराठों, रुहेलों तथा विदेशियों को सौंपकर वे कविता करने बैठ गए।

दिल्ली पहुँचने पर इस दक्षिणी भाषा की दशा बदलने लगी, जिसका भाषा-रूपी शरीर देशी और छंद शृंगार आदि विदेशी थे। उसने अपना विचार और कलेवर भी बदलना आरंभ किया। यह परिवर्तन शीघ्र नहीं हो सका था, यद्यपि कुछ कवियों ने इसी काल में इसे बहुत-कुछ परिमार्जित करने का प्रयत्न किया। दक्षिणी मुहावरे, शब्द आदि बराबर उसमें मिले रहे। हिंदी शब्दों, तथा मुहावरों का बहिष्कार और उसके स्थान पर फारसी और अरबी का प्रयोग क्रमशः बढ़ता रहा। दक्षिण का प्रभाव घटता गया और उसके स्थान पर फारसी के विद्वान शायरों की विद्वत्ता की धाक उस भाषा पर बैठती गई। फारसी शायरी के शोख़ लाल रंग में हिंदी श्लेष का दुरंगापन भी क्रमशः मिटता गया। यद्यपि मजहर, सौदा, मीर आदि शायर इसका बहिष्कार करने में मुख्य थे, पर उन्होंने भी इसका प्रयोग किया है। इस काल में इन उस्तादों ने उर्दू भाषा को खूब सँवारा। फारसी विचारों, मुहावरों आदि के भूषणों से उसे अच्छी तरह सजाया और ऐसी शोखी दिखाई

कि मानों अब अपने चुलबुलेपन से वह धीरे धीरे सारे हिंदुस्तान के गले का हार होना चाहती है।

फारसी कविता पर सूफियाना रंग अच्छी तरह से चढ़ा हुआ था। सूफी साधुओं का उस समय दौर दौरा था। पीरो-मुर्शिद की चारों ओर धूम थी। इसलिए उर्दू ने भी उसी की नकल की। परंतु शीघ्र ही यह नकल अश्लीलतापूर्ण हो गई और शुद्ध प्रेम के बदले में अस्वाभाविक प्रेम की जड़ मजबूत की गई। इस काल के अच्छे-अच्छे कवियों की रचनाओं में भी इस प्रकार की अश्लील तथा अत्यंत निम्न श्रेणी की रचनाएँ मिलती है। 'मीरा', 'सौदा' आदि ने भी ऐसा ही किया है। इस काल में कवि की निरंकुशता छंद शास्त्र के विषय में विशेष थी। भावों तथा भाषा की सादगी इस काल की एक प्रधान विशेषता थी। काफिया पर विशेष जोर नहीं दिया जाता था और रदीफ को तो सब आवश्यक समझते थे। इस काल को अपनी रचनाओं से समृद्ध करने में 'आरजू', 'आबरू', 'मजमून', 'हातिम', 'मजहर' आदि कवियों ने विशेष योग दिया है।

उपर्युक्त कविगण उर्दू-साहित्य के आरंमिक काल के कवि माने जाते हैं। वे उर्दू-साहित्य के जन्मदाता और पथ-प्रदर्शक मात्र थे। उर्दू-साहित्य की उन्नति वस्तुतः मध्यकाल (सन् १७४३–१८४३) में हुई थी, इसी काल में वह अपनी पूर्णा-

वस्था को पहुँचा था। यदि यह काम उर्दू-साहित्य के क्षेत्र में न होता तो एक प्रकार से उसका प्राचीन साहित्य नाम मात्र को ही मिलता। कहा जा सकता है कि आरंभिक काल के कविगण ने उर्दू-साहित्य-वाटिका के एक कोने में बीजों का जखीरा तैयार कर दिया था, जिसे लेकर इसे इस काल के कवियों ने क्यारियाँ बनाईं और इस प्रकार उस वाटिका को सजा दिया। परंतु उनके प्रयत्न से फारस के सरो आदि अनेक प्रकार के वृक्ष भी इस भारतीय उद्यान में शोभा पाने लगे और उन वृक्षों पर कोयल, पिक आदि के स्थान पर बुलबुलें हजार-दास्ताँ चहचहाने लगीं। इस काल के चार कवि उर्दू भाषा-भाषी के स्तंभ माने जाते हैं, जिन्होंने उसको सँवारने और फारसी को अपना आधार मानकर उसे परिमार्जित करने में अधिक परिश्रम किया है। ये कवि हैं, 'दर्द', 'सौदा', 'मीर' और 'मजहर'। इस काल के आरंभ में भी हिंदी भाषा के बहुत से शब्द—नित, इधर, उधर, विस्तर, लगा, तई आदि प्रचलित थे, परंतु उनका प्रयोग कुछ दिन बाद उठ गया, 'हिलना', 'किसना' आदि क्रियाओं को हलना और कसना के समान कविता में रख देते थे। आरंभ में फारसी के नियमानुसार शब्दों में बहुवचन के चिन्ह लगाये जाते थें, जैसे महबूबाँ, बुलबुलाँ, परंतु अब हिंदी के चिन्ह लगते हैं, जैसे महबूबों, बुलबुलों। 'आबरू' आदि कवियों ने कर्मवाचक 'को' को 'कों' लिखा है, परंतु सौदा ने एक गजल में 'को' का ही प्रयोग

किया है। से, तूँ, तूने किसू आदि शब्दों का रूप बदलकर इस काल के पूर्वार्ध में, से, तू, तूने, उसने किसे, हो गया था। इस काल में लिंग-भेद पर भी विशेष ध्यान नहीं था और एक ही शब्द को कोई पुल्लिंग में और कोई स्त्रीलिंग में प्रयुक्त करता था।

यह काल काव्य-कौशल की टकसाल है, जिससे निकली हुई रचनाएँ परवर्ती कवियों के लिए आदर्श थीं और जिन्हें सामने रखकर आलोचकगण इनके परवर्ती, कवियों की रचनाओं की जाँच-पड़ताल करने लगे। मीर हसन की मसनवी, सौदा के कसीदे और हजो, 'दर्द' तथा 'मीर' की गजलें, आदि आज तक उसी प्रकार महत्वपूर्ण बनी हुई हैं। आज भी ये अपने अपने क्षेत्र में गुरुवत् मान्य हैं। इस काल में फारसी भाषा से इन उस्तादों ने विशेष सहायता ली और नई-नई सूझें काम में लाए। वासोख्त, मुसल्लस, आदि नई प्रकार की रचनाएँ भी आरंभ की। तजकिरे अर्थात् कवियों की संक्षिप्त जीवनियों सहित उनकी चुनी हुई कविताओं के संग्रह भी इसी काल में पहले पहल तैयार किए गए, यद्यपि ये विशेष रूप से फारसी भाषा में ही थे। इनमें 'मीर' का निकातुश्शोअरा' और हसन का 'नराकीए शोअराए उर्दू' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस काल के कवि 'दर्द' ने छोटे-छोटे बहरो में उच्च भावों को अच्छी तथा मुहावरेदार भाषा में व्यक्त किया है। अश्लीलता

तथा छिछोरापन कहीं नहीं मिलता। दूसरों की हँसी उड़ाना तथा इश्क मज़ाज़ी का घृणित रूप दिखाना सभी अनुचित समझते थे। उर्दू साहित्य के इतिहास में इनका नाम 'मीर' 'सौदा और मजहर के सममत्त है। यद्यपि 'मीर' इन्हें आधा कवि मानते थे, पर गुरू के समान इनकी प्रतिष्ठा भी करते थे। 'सौदा' ने भी इनकी प्रशंसा की है। 'दर्द' की कविता वास्तव में हृदय में दर्द या असर पैदा करने वाली है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

शमय के मानिन्द हम इस बज्म में।
चश्मे नम आए थे, दामनतर चले।

× × ×

वह दिन किधर गए कि हमें भी फराग था।
यानी कभू तो हम में भी दिल था दिमाग था।
गुजारा हूँ जिस खराबे में कहते हैं वाँ के लोग
है कोई दिन की बात ये घर था, ये बाग था

× × ×

वाकिफ न याँ किसी से हम हैं न कोई हमसे।
यानी कि आ गए हैं, बहके हुए अदम से।

× × ×

जग में आकर इधर उधर देखा।
वही आया नजर जिधर देखा॥

जान से हो गए बदन खाली।
जिस तरफ तूने आँख भर देखा॥

नाला फरियाद आह और जारी।
आप से हो सका सो कर देखा॥

उन लबों ने न की मसीहाई।
हमने सौ सौ तरह से मर देखा॥

'सौदा' इस काल के दूसरे मशहूर शायर हैं। इन्होंने पद्य और गद्य दोनों में लिखा है और इनकी रचनाओं में फारसी का एक दीवान भी है, जो छोटा होते हुए भी पूरा है। कुछ कसीदे फारसी में कहे हैं। दीवान रोख्ता इनकी कविता का बड़ा खजाना है, जिसमें गजल, मुखम्मस, आदि सभी कुछ है। चौबीस मसनवियाँ भी इन्होंने लिखी हैं, जिनमें बहुत सी कहानियाँ पद्य बद्ध हैं। इनके उर्दू के कसीदे बड़ी धूमधाम के हैं। ये उर्दू के पहले कवि हैं, जिन्होंने कसीदों को लिखा है और ऐसा लिखा है कि फारसी के प्रसिद्ध कवि अनवरी, जहूरी आदि को दबा दिया है। 'सौदा' एक उच्च कोटि के····कवि थे और यही कारण है कि इनका प्रभाव इनके परवर्ती कवियों पर बहुत पड़ा है। 'मीर' जैसे कर्मठ समालोचक कवि भी इन्हें पूरा कवि मानते थे और 'मलिकुश्शोअरा' के पद के योग्य समझते थे। इनकी कविता के कुछ उदाहरण देखिए—

जो मजकूर उससे करता है कोई गमखार रोने का।
तो कहता है कि चुप रह, है उसे आजार रोने का॥

मैं अपने हाल पर हँसता हूँ वरना हर घड़ी जालिम।
मुहब्बत में तेरी सामाँ किया तैयार रोने का॥

कभू मैं बात बिन रोए नहीं की उससे पर उनने।
न पूछा यूँ सबब क्या है तेरे हर बार रोने का?

× × ×

जब नजर उसकी आन पड़ती है।
जिंदगी तब ध्यान पड़ती है॥

एक के मुँह से जिस घड़ी निकले।
फिर तो सौ की जबान पड़ती है॥

लेकिन इतना कहे कोई मुझसे।
कभू उसके भो कान पड़ती है?

इस काल के सबसे प्रसिद्ध कवि 'मीर' थे। इनका उर्दू साहित्य में वही स्थान है, जो हिंदी में तुलसी या सूर का है। गालिब, नासिक, हसन आदि अनेक बढ़े-बड़े कवियों ने मीर की प्रशंसा की है। परवर्ती कवियों पर इनका काफ़ी प्रभाव पड़ा। करुण रस की कविता में जो हृदयद्रावकता, तीव्रता और तत्काल मर्म व्याख्या की अनुभूति है, वह इन्हें उर्दू का सर्वश्रेष्ठ कवि बताती है। प्रेम काव्य के रचयिताओं में भी

इनका स्थान प्रथम श्रेणी में है। इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

हस्ती अपनी हबाब की सी है।
यह नुमाइश सुराब की सी है॥
नाजुकी उसके लब की क्या कहिए।
पंखड़ी एक गुलाब की सी है॥
बार बार उसके दर पर जाता हूँ।
हालत एक इज्तिराब की सी है॥
मीर उन नीम बाज आँखों में।
सारी मस्ती शराब की सी है॥

× × ×

फकीराना आए सदा कर चले।
मियाँ खुश रहो हम दुआ कर चले॥
जो तुम बिन न जीने की कहते थे हम
सो उस अहद को अब वफा कर चले

× × ×

इब्तदाए इश्क है रोता है क्या।
आगे आगे देखिए होता है क्या॥

..क्षेप में, इस काल के कवियों ने उर्दू-साहित्य के भंडार

को भर दिया है। उर्दू भाषा-भारती को वैभवमय बनाने वाले इसी युग के शायर हैं। इन शायरों की कविता में कहने का तर्ज अनोखा रहा। भाषा के सौष्ठव से इनकी कविता भावों के विपुल भार को वहन करने में काफी समर्थ रही है। इनकी शायरी के भाव-सौंदर्य को देखकर यही कहना पड़ता है कि खड़ी बोली के कवियों को भी उर्दू-साहित्य की इस विशेषता पर सूक्ष्म दृष्टि डालना है और कम लिखकर अधिक प्रभाव डालने का अनुकरण उर्दू काव्य से करना है।

उर्दू काव्य का स्वर्ण युग

उर्दू साहित्य के इतिहास में दिल्ली केंद्र का महत्व जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले दिल्ली और लखनऊ केंद्र की शायरी का अंतर समझ लें। दिल्ली स्कूल की शायरी दाखिली रंग की है और लखनऊ की खारजी रंग की। पहले का संबंध जी या मन से है अर्थात् वह Subjective है। तथा दूसरे का संबंध वस्तु से है, अतः वह Objective है। इस तरह से यह स्पष्ट है कि दोनों की एक दूसरे से बिलकुल भिन्न प्रकार की शायरी है। दाखिली का संबंध अगर दिल से है तो खारजी का दिमाग से, एक का लक्ष्य दिल खोलकर आगे रख देना है तो दूसरे का काम रूप को सजाना है। दूसरे शब्दों में दिल्ली की शायरी का झुकाव भाव पक्ष की ओर है, तो लखनऊ की शायरी का झुकाव कला पक्ष की ओर। दिल्ली वालों का नारा है—

'जान है तो जहान है' और लखनऊ वालों का नारा है—'बदन हो तो जहान है।'

उपर्युक्त बातों का स्पष्ट परिणाम दोनों केंद्रों की शायरी में दिखाई पड़ता है। दिल्ली वालों की शायरी चूँकि दाखिली है, इसलिए उसमें वही चीज है, जो दिल पर गुजरता है और जबान से निकलती है। बनावट व तकल्लुफ से नापाक न होने के कारण वे दिल की बातें आसानी से हमारे दिलों को छू लेती हैं। लेकिन लखनऊ की शायरी की बात बिलकुल दूसरी है। वहाँ के शायर ऐसी शायरी किया करते थे जिसमें सूझ और चमत्कार की दाद तो हर आदमी देगा, लेकिन उसका उनके दिल पर कोई असर नहीं होगा। दिल्ली की शायरी प्रेम मूलक है। आशिक के विरह-मिलन, आशा-निराशा, व्यथा - विनोद आदि का वर्णन इस सचाई से किया गया है कि सुनने वालों के दिल से भी आह निकल ही जाती है और इधर लखनऊ की शायरी में सिर्फ माशूक के नाज-नखरे, हाव-भाव, रूप-सौंदर्य, बनाव-शृंगार, भोग-विलास आदि का बोलबाला है, जिन्हें पढ़ या सुनकर आदमी सिर्फ वाह करके रह जाता है। दिल और दिमाग का यही फर्क है, जो दिल्ली और लखनऊ की शैलियों में मुख्यतः मिलता है।

दिल्ली और लखनऊ की शायरी में इस तरह फर्क क्यों आया इसके बुनियादी कारण हैं। दिल्ली की शायरी का जन्म

उस समय हुआ, जब मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा थ। इसके विपरीत लखनऊ की शायरी अवध के विलासी नवाबों की छत्रछाया में पली। दिल्ली की कविता नादिरशाही लूट मार के बीच पनपी थी, जिसमें जुदाई की तड़प, व्यथा और टीस, आह-कराह के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता था? वहाँ के शायरों ने जुदाई और महजूरी (विरह-व्यथा) ही देखी थी। अपने चारों ओर उन्हें गरीबी, बेबसी और अशांति का ही राज्य फैला दिखाई देता था। इसी मिल्कियत को लेकर उन्हें शायरी की राह पर कदम बढ़ाना पड़ा। दिन रात का क्रंदन और आहें भरना ही उनके नसीब में बदा था। फिर वे अपनी शायरी को इनसे कैसे अलग रख पाते। लेकिन लखनवी शायर तो ऐसे आशिक थे जिन्हें वस्लेयार का सुख नसीब था और जो विलास-मय वातावरण में रहते थे। लखनऊ के नवाबों की दी हुई जागीरें, वजीफे आदि के कारण वे खुशामदी और मसखरे बन गए थे। इनका काम मुशायरों में अपना उस्तादाना रंग जमाने का ही रह गया था। मुशायरों की होड़ होने के कारण उर्दू जबानें की तो खूब तरक्की हुई मगर खारजी शायरी की बुनियाद पड़ गई। सादगी तकल्लुफ में बदल गई और हर शै में दिल्ली के मर्दानेपन की जगह जनानापन आ गया।

दिल्ली की शायरी को आध्यात्मिकता ने उच्च भावों और विचारों को गर्मी दी थी। इसके प्रभाव से गजलों में दखलियत आई और इश्किया शायरी भी रूहानियत के नूर से पाक हो

गई। दिल्ली के शायर खारजी मुतल्लात (संयोग शृंगार) के बजाए हुस्न के असर का बयान करते थे। इसलिए उनकी शायरी रम्जयत (प्रतीकात्मक) भी है और दिल के वारदात के अलावा जिंदगी के अन्य पहलुओं पर भी लागू है। लखनऊ वालों ने तसव्वुफ छोड़ा तो यह स्वाभाविक ही था कि उनकी शायरी में खारजीयत आए और साथ ही नख-सिख, संयोग-शृंगार आदि का वर्णन हो। उन्होंने भाव को अप्रधान या अनावश्यक समझा। तजरुबा और अहसासात की बेकदरी हुई। इस तरह शायरी दिल की नहीं जबान की चीज बन गई। तकल्लुफ को शायरी की जान और पेचीदगी को फन समझा जाने लगा। लखनऊ के वे मुशायरे क्या थे—एकदम अखाड़े थे, जिसमें शायर को दाँव-पेंच से तैयार होकर जाना पड़ता, अन्यथा मुँह की खानी पड़ती थी। जहाँ दिल्ली के शायर हृदय के भावों का चित्रण सीधे-सादे और मर्मस्पर्शी ढंग से करते थे, प्रवाह को कोमल बनाकर मधुरता और भावुकता का स्रोत बहाते थे, वहाँ लखनऊ वाले अप्रचलित उपमा, श्लेष और अतिशयोक्ति आदि की भरमार से कविता को दिमागी करामात का अजायबघर बना देते थे।

लखनऊ शैली की यह अस्वाभाविक गति दिल्ली के उत्तर काल के कवि गालिब और मोमिन के कारण रुकी। महान शायर गालिब का इतना बड़ा असर लखनवी शायरों पर पड़ा

कि उनको मालूम हो गया कि दिल ही सब कुछ है। परिणाम यह हुआ कि लखनऊ वाले भी दिल्ली के अनुयायी बन गए। दिल्ली की अदबी अहमियत न रहने पर भी ये उसी राह पर चल पड़े। और आज तो ज्यादातर शायर देहलवी रंग में ही गजल कहते हैं।

दिल्ली साहित्य केंद्र के उत्तर काल में मोमिन, गालिब, जौक जफर मुख्य हैं। इन्हीं शायरों के बोए बीजों से आधुनिक उर्दू साहित्य फूला-फला। इनमें गालिब का स्थान सर्वोपरि है। दिल्ली की रचना की सादगी, आडंबर दीनता, स्पष्टता आदि जो विशेषताएँ हैं, उन्हें गालिब और इस काल के अन्य शायरों में देखा जा सकता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण उनकी शायरी का महत्व बढ़ा।

मोमिन मुशायरों में बड़े ही हृदय द्रावक स्वर से कविता पाठ करते थे। उन्होंने कभी किसी व्यक्ति की तारीफ में कुछ नहीं लिखा। प्रेम उनका अनुभूत विषय था, इसलिए उनकी प्रेस संबंधी कविताएँ बहुत उत्तम हैं। कवि की विद्वत्ता और प्रतिभा ने उनमें चार चाँद लगा दिए हैं। उनकी कविताएँ हृदय की करुण भावनाओं से संबंधित होने के कारण मर्म पर चोट करती हैं। इस तरह की साधना में कोई महान साधक शिल्पी ही सफल हो सकता है। शेफ्ता तस्की, नसीम आदि इनके शिष्य थे, जिनमें नसीम की भाषा बहुत ही परिमार्जित, सरल

स्वाभाविक है। कल्पना की उड़ान और वर्णन शैली भी कम आकर्षक नहीं है।

मोमिन की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

सहर से शाम तक तुझ बिन यही हालत रखी दिलने।
न मुझको चैन देता था न आप आराम लेता था॥
न मानूँगा नसीहत पर न सुनता मैं तो क्या करता॥
कि हर-हर बात पर नासेह तुम्हारा नाम लेता था॥

× × × ×

खुशी न हो मुझे क्यों कर कजा के आने की।
खबर है लाश पै उस बेवफा के आने की।

× × ×

मंजूर हो तो वस्ल से बढ़कर सितम नहीं।
इतना रहा हूँ दूर कि हिजराँ का गम नहीं॥

× × ×

असर उसको जरा नहीं होता।
रंज राहत फिजा नहीं होता॥

तुम हमारे किसी तरह न हुए।
वर्ना दुनियाँ में क्या नहीं होता॥

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

× × ×

यह हालत है तो क्या हासिल बयाँ से।
कहूँ कुछ और कुछ निकले जुबाँ से॥

वह आए हैं पशीमाँ लाश पर अब।
तुझे ऐ जिंदगी लाऊँ कहाँ से॥

जौक बचपन से ही ऐसे कवि थे कि शाह नसीर को यह अंदेशा रहता था कि कहीं यह मुझसे बड़ा शायर न हो जाये। इसी सबब से शाह नसीर जौक की कविता को ठीक तरह से इसलाह नहीं करते थे। किसी के प्रोत्साहन या मार्ग-दर्शन के बगैर यह अपने परिश्रम से कवि बने। यह गजल और कसीदे लिखने में सिद्धहस्त थे। आधुनिक उर्दू गद्य लेखकों का अगुआ आजाद इनका ही शिष्य था। ये आशुकवि भी थे। इनकी भाषा बड़ी ही मँजी हुई है, कहीं शिथिलता का नाम तक नहीं। ओज और प्रसाद गुण से भरी इनकी कविताएँ रंगीन फूलों की माला कहलाती हैं। समकालीन कवि गालिब के सिवाय और उर्दू के किसी भी कवि से इतनी तुलना संभव नहीं।

इनकी कविता के कुछ उदाहरण देखिए—

किसी बेकस को ऐ बेदादगर मारा तो क्या मारा।
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा॥

नमा शैतान मारा एक सिजदे के न करने से।
अगर लाखों बरस सिजदे में सर मारा तो क्या मारा॥

× × ×

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जाएँगे।

× × ×

जाहिद शराब पीने से काफिर हुआ क्यों मैं।
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया॥

× × ×

तू हमारी जिंदगी पर जिंदगी को क्या उम्मीद।
तू हमारी जान लेकिन क्या भरोसा जान का॥

× × ×

किया हमने सलाम ऐ इश्क तुझको।
कि अपना हौसला इतना न पाया॥

× × ×

उलफत का नशा जब कोई मर जाए तो मर जाए।
यह दर्द सर ऐसा है कि सर जाए तो सर जाए॥

× × ×

तुम भूलकर भी याद नहीं करते हो कभी।
हम तो तुम्हारी याद में सब कुछ भुला चुके॥

गालिब उर्दू साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, गद्य और पद्य दोनों के सव्यसाची थे। पहले यह अधिकतर फारसी में ही

लिखा करते थे और बीच-बीच में जायका बदलने के खयाल से उर्दू में लिखने लगते थे। इनकी उर्दू कविताओं में पहले फारसी के शब्दों की अधिकता रहती थी, किंतु जब लोगों ने शिकायत की तो आसान भाषा में लिखने लगे। कठिन गजलों को निकालकर छपवाने से उनका उर्दू कलाम बहुत संक्षिप्त हो गया है। फिर भी, जितना है वही गालिब की शोहरत के लिए काफी है। इनके शेर सूक्तियों और दार्शनिक तत्वों से भरे रहते हैं। हुस्ने इश्क के परदे में इन्होंने जिंदगी के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। 'हाली' 'जकी,' 'रख्शाँ, आदि गालिब के ही मुख्य शिष्यों में है।

गालिब की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हम सखुन कोई न हो और हमजुबाँ कोई न हो॥

× × ×

न सुनो गर बुरा कहे कोई।
न कहो गर बुरा करे कोई॥
रोक लो, गर गलत चले कोई।
बख्श दो गर खता करे कोई॥

× × ×

किससे महरूमिए किस्मत की शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जाएँ सो वह भी न हुआ॥

खामोशी में निहाँ खूँगुश्ता लाखों आरजूए हैं।
चिरागे मुर्दा हूँ मैं बेजबाँ गोरे गरीबों का॥

× × ×

ये न थी हमारी किस्मत जो विसाले यार होता।
अगर और जते रहते यही इंतिजार होता॥
यह कहाँ की दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह।
कोई चारा-साज होता, कोई गम गुसार होता॥

× × ×

इस सादगी पै कौन मर जाए न ऐ खुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥
मिलना अगर नहीं तेरा आसाँ तो सहल है।
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार ही नहीं॥

× × ×

पूछते हैं वह कि गालिब कौन है।
कोई बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या॥

× × ×

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन।
दिल के खुश रखने को गालिब ये ख्याल अच्छा है।

× × ×

वह आग घर में हमारे खुदा की कुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥

नजर लगे न कहीं उनके दस्तो-बाजू को।
ये लोग क्यों, मेरे जख्में जिगर को देखते हैं॥

× × ×

हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले॥

× × ×

नींद उसकी है, दिमाग उसका है, रातें उसकी हैं।
तेरी जुलफें जिसके बाजू पर परीशाँ हो गईं॥
रंज से खूगर हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझ पर कि आसाँ हो गईं।

× × ×

जिंदगी अपनी जब इस शक्ल से गुजरी गालिब।
हम भी क्या याद रखेंगे कि खुदा रखते थे॥

इस तरह यह स्पष्ट है कि दिल्ली केंद्र के उत्तर काल के कवियों की देन उर्दू साहित्य को अभूत पूर्व है। इन्हीं कवियों ने ऐसी ठोस चीजें लिखीं जिन पर बाद की पीढ़ियों को अभिमान है और जो अनुकरण करने लायक हैं। ये उत्तर कालीन कवि थे जिन्होंने विभिन्न शैलियों पर विजय प्राप्त करके दाखिला का

साम्राज्य स्थापित किया। इन खूबियों के कारण निस्संदेह इस युग को उर्दू साहित्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

उर्दू साहित्य का केंद्र—लखनऊ के मशहूर शायरों की विशेषताएँ

जब दिल्ली का ऐश्वर्य और वैभव मुगल - साम्राज्य के साथ ही लुप्त होने लगा, तो वहाँ के सुप्रसिद्ध शायर चंचला की खोज में स्वयं चंचल हो उठे। सिर्फ पदवियों और आवभगत से ही उनकी काव्य-तृष्णा क्योंकर शांत होती। औरंगजेब की मृत्यु के बाद ही मुगलों की राज्य-लक्ष्मी रूठ चली। अठारहवीं शताब्दी का वह प्रारंभ था, जब कि नादिरशाही लूट-मार के कारण दिल्ली खाली और उदास थी। मराठों और जाटों के उपद्रव ने भी उसे कम तबाह नहीं किया। मुगल साम्राज्य के केंद्र दिल्ली की जब यह हालत थी तो उधर सूबों के शासक अपनी स्वतंत्र सत्ता जमाने में लगे थे। उनके पास शक्ति भी थी और भरा पूरा खजाना भी। जब दिल्ली के शायरों ने पास ही के ऐश्वर्यशाली और मशहूर दानी आसफउद्दौला की प्रशंसा सुनी तो वे दिल्ली छोड़कर लखनऊ पहुँचने लगे। सबको वहाँ आश्रय मिला। मीर, सौदा, मुसहफी, ईशा आदि इस नवीन छत्रछाया में पहुँचे और ऐसा बीजारोपण किया कि आगे चलकर लखनऊ एक नया साहित्य केंद्र बन गया।

अवध के नवाबगण कवियों को आश्रय देने में या काव्य-

रसिकता दिखाने में दिल्ली के सम्राटों से पीछे नहीं रहना चाहते थे। उन्होंने आगंतुक शायरों को बराबर सम्मानित किया और धन तथा पदवियों से पुरस्कृत करते रहे। साधारण से साधारण कवि भी इस उदारता से वंचित नहीं रहे। लेकिन यह संपर्क दोनों के हक में विशेष लाभदायक नहीं हुआ। 'मीर' और 'सौदा' जैसे स्वाभिमानी कवियों को छोड़कर अन्य सभी कवियों ने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना मात्र अपना कर्तव्य समझ लिया। कविता-कामिनी की शालीनता का कुछ विचार न कर वे अश्लील और कामुकता को उभारनेवाली कविताएँ करने लगे। भावों के उद्गार से अधिक शब्दों की कलाबाजी कविता का लक्ष्य हो गया, ठीक उसी तरह जैसे हिंदी के रीतिकाल में हुआ था। आश्रयदाता नवाबों पर ऐसी कविताओं का यह प्रभाव हुआ कि वे विषय-वासना के गहरे आवर्त में पड़कर शीघ्र पतन के लोक में पहुँच गए। अवध के नवाबों के अलावा लखनऊ के अन्य धनी-मानी सज्जन कवि-सभाओं का आयोजन कर कवियों को पुरस्कृत किया करते थे। अंत में ऐसा हुआ कि दिल्ली से आए हुए कवियों की संख्या धीरे-धीरे कम होने लगी। तथा स्थानीय कवि-प्रतिभाएँ ही अधिकतर प्रकाश में आने लगीं। इस प्रकार लखनऊ में भी एक नया साहित्य केंद्र स्थापित हो गया। इस नए केंद्र में दिल्ली केंद्र से कुछ खास विभिन्नताएँ भी आ गईं। प्रोत्साहनपूर्ण वातावरण में यहाँ उर्दू कविता खूब परिपुष्ट हुई। 'नासिख' और

उनकी शिष्य-परंपरा ने लखनऊ केंद्र की विशेषताओं का उन्नयन और पोषण किया।

कविता हार्दिक उद्‌गार है। उसकी स्वाभाविक सरसता नष्ट हो जाती है, जब उसे शब्दाडंबर और आलंकारिक भाषा से दुरूह कर दिया जाता है। दिल्ली केंद्र में ऐसी बात नहीं थी, लेकिन लखनऊ केंद्र ने शब्दाडंबर और आलंकारिकता की ही शैली को अपनाया। 'नासिख' और उनके शिष्यों ने भावों की समता की एक तरह से उपेक्षा करते हुए अनुप्रास एवं चमत्कार पर दृष्टि रखी। कहा जाता है कि भाषा कवियों की अनुवर्तिनी होती है, लेकिन ये सुकविगण भाषा पर विशेष अनुराग रखते थे। इनकी रचनाएँ गंभीरता और रोचकता के गुणों से पूर्ण नहीं होती थी, सिर्फ प्रौढ़ता ही परिलक्षित होती थी। शिष्टता, सुकुमारता, प्रसाद और सरसता आदि गुण भाषा की प्रमुखता के आगे दब गए। हिंदी के रीति कालीन कवियों की तरह ही ये भाषा की दुरूहता के लिए प्रसिद्ध हुए, उसी पथ का अनुकरण इस केंद्र के कवियों ने किया, यह मार्ग स्थायी नहीं था। 'अनीस' और 'दबीर' आदि ने आगे चलकर इस का त्याग कर दिया। दिल्ली वाले छोटी-छोटी भाव मय गजलें लिखते थे, लेकिन लखनवी शायरों की गजलें लंबी और नैसर्गिक प्रवाह से शून्य होती थीं। शब्दों और मुहावरों के प्रयोग में इस केंद्र ने अपनी कुशलता जरूर

दिखाई। इनके कुछ नियमों को तो दिल्ली वालों ने मान लिया, लेकिन कुछ अभी तक विवाद के कारण बने हुए हैं। ये ही इस केंद्र की खूबियाँ हैं। अब इस केंद्र के कुछ प्रमुख शायरों और उनकी विशेषताओं का जिक्र किया जाएगा।

'नासिख'

'नासिख' का पूरा नाम शेख इमामबख्श 'नासिख' था। इनके पिता का नाम ज्ञात नहीं है। खुदाबख्श नामक एक व्यापारी ने इन्हें गोद लेकर पढ़ाया-लिखाया जिससे ये सुप्रसिद्ध कवि हो सके। इनके कवि-गुरू का कुछ ठीक पता नहीं चलता। यह अरबी फारसी के अच्छे जानकार थे। 'मीर' ने तो इन्हें शिष्य बनाना ही कबूल नहीं किया, लेकिन 'तनहा' को अपनी कविताएँ यह कभी-कभी दिखाते थे। ज्यादातर इन्हें अपने आप पर ही भरोसा था। प्रायः सभी-कवि-सभाओं में यह जाते थे और पुराने प्रसिद्ध कवियों की कविताएँ ध्यान पूर्वक सुनते थे। आगे चलकर जब इन्होंने भी कवि-सभाओं में गजलें पढ़ना आरंभ किया, तो इन्हें प्रशंसा और सम्मान दोनों ही मिले।

इन्होंने तीन दीवान लिखे। पहला दिवान उनका 'दीवाने परेशां' के नाम से सन् १८१६ में निकला। इसमें गजलें, किते और तारीखें हैं। इसके बाद क्रमशः सन् १८३१ और सन् १८३२ में दो और दीवान संगृहीत हुए। इनकी तारीखें

इतिहास के लिए बड़े महत्व की हैं क्योंकि वे सभी अपने समय के उर्दू कवियों तथा प्रसिद्ध पुरुषों की मृत्यु पर लिखी गई हैं। येह कसीदे और हजो नहीं लिखते थे। इनका एक अनुवाद भी 'हदीसे मुफज्जल' का है जो मसनवी के रूप में है और 'नज्मेसिराज' के नाम से मशहूर है। इनका लिखा एक और मसनवी है जिसका नाम 'मौलूद शरीफ' है। इसमें मुहम्मद के जन्म का वर्णन बहुत ही रोचक शैली में किया गया है।

इनकी भाषा बड़ी ही मँजी और सुधरी हुई है। ग्रामीण शब्द तथा पुराने मुहाविरे इन्होंने प्रयुक्त नहीं किए, बल्कि इसके विपरीत अरबी फारसी के बड़े-बड़े अप्रचलित शब्दों का कविता में प्रयोग किया। यही करण है कि इनकी कविता का सरल प्रवाह खाता हो गया। जब यह सुगम भाषा लिखने बैठते थे, तो भाव गांभीर्य में कमी और शब्द योजना में शैथिल्त आ जाता था। इनकी भाषा प्रौढ़ थी और कविता निर्दोष रहती थी। यद्यपि दिल्ली से आने वाले कवियों ने ही लखनऊ साहित्य केंद्र स्थापित किया था। पर उसमें निजी विशेषता लाना 'नासिख' का ही काम था। इन्होंने बहुत से योग्य तथा प्रतिमा- संपन्न शिष्य बनाकर अपना संप्रदाय स्थापित किया। लखनऊ के केंद्र में इनका प्रभाव बहुत है तथा इनकी कविता सनद मानी जाती है। उर्दू साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इन्होंने

ज्यादातर ग़ज़लें ही लिखी हैं, कुछ तारीखें भी लिखी हैं, लेकिन कसीदे नहीं लिखें। यद्यपि इनकी ओजस्विनी भाषा कसीदे के उपयुक्त थी, पर इनके स्वातंत्र्य प्रिय स्वभाव ने इन्हें वैसा नहीं करने दिया। न इन्हें चापलूसी पसंद थी और न यह किसी के नौकर थे। गजलों के कारण ही इनकी प्रसिद्धि है, फिरीभी उनमें स्वाभाविकता की कमी है। भावोत्कर्ष के लिए इन्होंने अलंकार नहीं प्रयुक्त किए हैं, बल्कि उन्हीं के लिए कविता रची है। इसी कारण काव्य-सौष्ठव आडंबर में ढक सा गया है। भाव उत्कृष्ट न होने के कारण तथा हास्यादि रस के अभाव के कारण इनकी कविताएँ हृदय-ग्राहिणी नहीं हैं। फारसी कवियों के भाव तथा शब्द ज्यों के त्यों उठा लेना इनका साधारण काम था जैसा कि उर्दू के अन्य अनेक प्रसिद्ध कवियों ने भी किया है। 'नासिख' का अर्थ ही नष्ट करनेवाला है और वास्तव में इन्होंने दिल्ली-साहित्य-केंद्र के प्रभुत्व का अंत करके लखनऊ का नया साहित्य केंद्र स्थापित किया था।

'नासिख' की कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

वह नहीं भूलता जहाँ जाऊँ।
हाय मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ॥

× × ×

जो खास हैं वह शरीके गरोहे आम नहीं।
शुमार दानए तस्बीह में इमाम नहीं॥

तू भी अगोशे तसव्वुर से जुदा होता नहीं।
ऐ सनम जिस तरह दूर एकदम खुदा होता नहीं॥

× × ×

आज होता है दिला दर्द तो मीठा मीठा।
ध्यान आता है तुझे किसके लबे शीरीं का॥

× × ×

सैकड़ों आहें करूँ पर जिक्र क्या आवाज का।
तीर जो आवाज दे है नक्स तीर अंदाज का॥
नाजनीनों से करूँ क्या रब्त मैं नाजुक मिजाज।
बोझ उठ सकता नहीं मुझसे किसी के नाज़ का॥

× × ×

तुर्फा गुल इस बाग में है और शबनम है अजीब।
हँस के बैठा जो तेरी महफिल में वह रोकर उठा॥
बात जिन नाजुक मिजाजों से उठती थी कभी।
बोझ उनसे सेकड़ों मन खाक का क्योंकर उठा॥

नासिख-परंपरा के कवि—'बर्क'

यद्यपि 'नासिख' के बहुत से शिष्य हुए, परंतु उनमें 'बर्क', 'बन्ह', 'रश्क', 'मुनीर', 'आबाद', तथा 'मैह' बहुत प्रसिद्ध हैं। 'बर्क' का पूरा नाम फतहुद्दौला बख्शी उल्मुल्क मिर्जा मुहम्मद रजा खाँ था और ये मिर्जा काज़िमअलीखाँ 'खालिक' के पुत्र

थे। वाजिदअलीशाह 'अख्तर' के यह प्रिय दरबारी थे तथा साथ ही उनकी कविताओं के संशोधक भी। गद्दी से उतारे जाने पर नवाब के साथ यह भी कलकत्ते गए और सन् १८५७ के विद्रोह के समय जब नवाब साहब फोर्ट विलियम में सुरक्षित रखने के लिए लाए गए, तब भी यह उनके साथ थे। उसी वर्ष वहीं पर इनकी मृत्यु हो गई। यह अपने गुरू की प्रतिष्ठा करते थे तथा उनकी कविता का अनुकरण भी करते थे। इन्होंने गज़ल, मुखम्मस आदि सभी लिखे हैं। एक बड़ा दीवान तथा लखनऊ शहर पर 'शहर आशोब' नामक करुणापूर्ण मसनबी भी इन्होंने लिखी है। इनकी रचनाओं में उपमादि साम्य अलंकारों की अधिकता है। अस्वाभाविकता का तो समय वह था ही। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था तथा यह काव्य-शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

'बन्ह'

शेख इमदादअली 'बन्ह' की अधिक अवस्था लखनऊ में ही बीती, परंतु यह धनाभाव के कारण बहुत दुखी रहा करते थे। बुढ़ापे में रामपुर के नवाब ने इन पर कृपा करके इन्हें बुला लिया था और आजीविका भी नियत कर दी थी। वहीं पर पचहत्तर वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। इनके दीवान का संकलन सन् १८७८ 'आतिश' के शिष्य 'हिंद' ने किया था। इनकी कविता में अलंकारों की भरमार है, परंतु स्वाभाविकता

कहीं नष्ट नहीं होने पाई है। इनकी कविता बड़ी ही हृदयग्राहिणी और करुणोत्पादक है। इनकी शब्द-योजना बड़ी ही चुस्त होती थी। भाव सुंदर तथा गंभीर हैं और प्रसाद गुण भी पूरी तरह समाविष्ट हुआ है। काव्य-शास्त्र के तो मर्मज्ञ यह थे ही। भाषा-ज्ञान में भी 'नासिख' और 'रश्क' के बाद इन्हीं का स्थान है।

'रश्क'

'रश्क' का पूरा नाम मीरअली औसत 'रश्क' था। भाषा के विचार से यह 'नासिख' के शिष्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इनका एक बड़ा और मान्य कोश है, जो नफसुल्लुगात के नाम से प्रसिद्ध है। इनके दो दीवान हैं, जिनमें एक का नाम 'नज्मे मुबारक' और दूसरे का 'नज्मेगिरामी' है। 'नासिख' के समय से ही शब्दों के ठीक प्रयोग करने में इनकी सम्मति मान्य समझी जाती थी। ये तारीखें खूब लिखते थे और इनके शिष्यों की संख्या भी बहुत थी। इनकी कविताएँ शृंगार से पूर्ण रहती थीं। खासकर संयोग तथा स्त्रियों के शृंगार का वर्णन अधिक रहता था। वृद्धावस्था में यह कर्बला चले गये थे और वहीं सत्तर साल की उम्र में इनकी मृत्यु हो गई थी। भाषा के विचार से इनकी कविता सनद मानी जाती है।

'मुनीर'

'मुनीर' का पूरा नाम सैयद इस्माइल हुसेन 'मुनीर' था।

इनका जन्म शिकोहाबाद में हुआ था। इनकी शिक्षा लखनऊ में हुई थी, व इन्हें आश्रय कानपुर में नवाब निजामुद्दौला के यहाँ मिला था। पहले यह 'नासिख' के और बाद में 'रश्क' के शिष्य रहे थे। 'मुंतखबाते आलम', 'तनवीरुलअशार' और 'नज्मे मुनीर' नामक तीन दीवान इन्होंने लिखे थे। इनमें से प्रथम की भूमिका में इन्होंने अपना जीवन-वृत्तांत भी दिया है। इमामों का वर्णन करते हुए इन्होंने 'मेराजुल मजामीन' नाम से एक मसनवी भी लिखी है तथा एक रिसाला 'सिराजे मुनीर' भी है। कसीदे, किले, मर्सिए, गजल आदि सभी प्रकार की कविताएँ इन्होंने लिखी हैं। कल्पना तथा भावोत्कर्ष इनकी कविता में दर्शनीय है। सादगी और सुगमता के बावजूद यह अपने गुरू की शैली का अनुकरण करते थे।

'आबाद'

मिर्जा मेंहदी हसन 'आबाद' की गिनती लखनऊ के रईसों में थी। यह फरुखाबाद के नवाब के रिश्तेदार थे। इनका जीवन सदा सुखमय रहा। प्रत्येक कवि-सभा में जाने और कविता सुनाने का इन्हें शौक था। इनके दो दीवान, एक मसनवी और तीन वासोख्त मिलते हैं। इनका 'बहारिस्ताने सखुन' नामक संग्रह विशेष प्रसिद्ध है, जिसमें 'नासिख', 'आतिश' और अपनी गजलें उसी बहर और काफिया के, एक साथ संगृहीत की हैं। इससे इन कवियों का तुलनात्मक अध्ययन

करने में आसानी होती है। यह नासिख के अच्छे शिष्यों में थे और इनकी कविता में प्रतिमा का चमत्कार भी दिखाई देता है, 'वासोख्त' इन्होंने अच्छे लिखे हैं, पर उनमें मुहावरों की कमी खटकती है।

'मेह्न'

'मेह्न' का पूरा नाम मिर्जा हातिम अली बेग 'मेह्न' था। इनका जन्म सन् १८१५ में हुआ था। यह चौदह वर्ष की आयु से ही कविता करने लगे थे और 'नासिख' के शिष्य रहे थे। इनका दीवान 'अलमाशे दुरख्शां' कहलाता है जिसका तारीखी नाम 'खियालाते मेह्न' है। 'पारए उरूज' नामक एक छोटा-सा छंदशास्त्र भी इन्होंने लिखा है, तथा दो मसनवी और 'दागे शुआए मेह्न निगार' की भी रचना की है। 'दागे दिल मेह्न' नामक एक वासोख्त और कुछ स्फुट कविताओं को भी हम भूल नहीं सकते। यह एक सुकवि थे। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और इनकी कविता प्रसाद गुण युक्त है।

'वजीर'

ख्वाजा मुहम्मद 'वजीर' एक फकीर पिता के पुत्र थे। यह इतने एकांतप्रिय थे कि नवाब वाजिदअली शाह के दो बार बुलवाने पर भी उनके दरबार में नहीं गए। इनका दीवान 'दीवाने फसाहत' के नाम से इनके मरने बाद प्रकाशित हुआ था। यह 'नासिख' के प्रधान शिष्य और उनकी शैली के मुख्य

परिपोषक थे। इनकी कविताओं के उदाहरण नीचे दिए आते हैं—

जो कहता हूँ तेरा बीमार हूँ मैं।
तो क्या कहता है कुछ अपनी दवा कर॥
नहीं उठने के कातिल की गली से।
कि हम बैठे हैं सर से हाथ उठाकर॥

× × +

जब खफा होता है तो यूँ दिल को समझाता हूँ मैं।
आज है ना मेहरबाँ कल मेहरबाँ हो जाएगा॥

× × ×

थाम लूँ दिल को जरा हाथों से।
आप पहलू से न उठ जाइएगा॥

'आतिश'

ख्वाजा हैदरअली 'आतिश' का जन्म फैजाबाद में हुआ था, लेकिन इनके पिता दिल्ली के रहनेवाले थे। पिता की मृत्यु अल्पायु में ही हो जाने के कारण इनकी शिक्षा पूरी न हो सकी। इनका ढंग सिपहियाना था और आगे चलकर नवाब मुहम्मद नकी के नौकर होकर लखनऊ आ बसे। यह पहले कवि-सभाओं में जाते थे और इंशा और मुसहिफी की जो चोटें आपस में चला करती थीं, उन्हें देखा-सुना करते थे।

कविता की ओर क्रमशः रुचि होने पर इन्होंने मुसहिफी को अपना शुरू बनाया। इनकी शिक्षा साधारण थी। यह अपने प्रतिद्वंद्वी 'नासिख' जैसे विद्वान नहीं थे। अवध के नवाब की ओर से इन्हें अस्सी रूपए मासिक की वृत्ति मिलती थी, तथा शिष्यों से भी कुछ भेंटें मिल जाती थीं। इस प्रकार जीविका से संतुष्ट होकर फकीर का-सा जीवन बिताते रहे। संतोषी स्वभाव के होने के कारण धन का लोभ इन्हें नहीं रहा, इसीलिए इन्होंने कभी किसी धनी-रईस की प्रशंसा में कविता नहीं लिखी। इनकी रचनाओं में एक दीवान है, जो इन्हीं के समय में प्रकाशित हो गया था। दूसरा छोटा संग्रह इनकी मृत्यु के बाद इनके शिष्य 'खलील' द्वारा प्रकाशित किया गया। गजल के सिवाय इन्होने कुछ लिखा ही नहीं। तत्कालीन सभ्य समाज की बोलचाल की भाषा का उत्तम नमूना इनकी कविता है। सीधी-सादी बातें शुद्ध और स्पष्ट भाषा में कविता-बद्ध कर देना ही इनकी विशेषता है। अपनी कविता को अलंकार आदि के बोझ से जटिल बनाने का प्रयत्न इन्होंने कभी नहीं किया। मुहावरों की भरमार होने के कारण इनके प्रयोग के लिए इनकी कविता सनद मानी जाती है। इनकी कविताओं को समझने के लिए कठिन मानसिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती। इनकी सभी कविताएँ प्रायः प्रसादगुण-युक्त हैं और सहज ही समझ में आनेवाली हैं। भाषा-सौष्ठव, सरलता और कवित्वशक्ति में यह किसी से कम नहीं हैं। समय के प्रवाह

में पड़कर शृंगारिक अश्लीलता को इन्होंने अपने काव्य में कभी स्थान नहीं दिया। इन्होंने अपने आश्रयदाता को भी प्रसन्न करने की कभी कोशिश नहीं की। इनकी गणना प्रथम श्रेणी के कवियों में होती है।

'आतिश' 'नासिख' के समकालीन थे। लखनऊ केंद्र उस समय दो भागों में बँट गया था, जिनके प्रधान ये दोनों कवि ही थे। आपस की प्रतिद्वंद्विता के कारण दोनों की प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ। प्रतिस्पर्धा होने पर भी ईर्ष्या की मात्रा इनमें नहीं थी। दोनों की शैली भिन्न थी पर अपने प्रतिस्पर्धियों की योग्यता के कायल दोनों थे। 'आतिश' ने तो 'नासिख' की मृत्यु के बाद कविता करना ही छोड़ दिया था, इस विचार से कि अब मेरी कविता का कोई मर्मज्ञ ही नहीं रह गया। 'नासिख' अपने समय में लोकप्रिय और सम्मान्य अवश्य थे, लेकिन समय ने उनकी क्लिष्ट शैली को नहीं अपनाया और उसने 'आतिश' को ही उनसे श्रेष्ठता माना। यों गालिब ने भी 'आतिश' को 'नासिख' से श्रेष्ठ माना है। 'आतिश' में प्रसाद तथा सुकुमार भावों का आधिक्य है, जब कि 'नासिख' में क्लिष्ट शब्द-योजना के कारण इनका अभाव है। 'आतिश' में नैसर्गिकता, भावों की उच्चता और गंभीरता है तो 'नासिख' में काव्योत्कर्ष-विशेष है, आलंकारिक चमत्कार तथा भाषा—नैपुण्य के कारण ओज का प्राचुर्य है।

'आतिश' की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते है-

जमीने चमन गुल खिलाती है क्या-क्या।
बदलता है रंग आसमाँ कैसे-कैसे॥
न गोरे सिकंदर न है कब्रे दारा।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे-कैसे॥
बहारे गुलिस्ताँ की है आमद आमद।
खुशी फिरते हैं बागवाँ कैसे कैसे॥

× × ×

सर शमय सा कटाइए पर दम न मारिए।
मंजिल हजार सख्त हो हिम्मत न हारिए॥

× × ×

मेरे सनम का किसी को मकाँ नहीं मालूम।
खुदा का नाम सुना है निशाँ नहीं मालूम॥
आखीर ही गए गफलत में दिन जवानी के।
बहारे उम्र हुई कब खिजाँ नहीं मालूम॥
खुलीं हैं खानए सैयाद में हमारी आँख।
कफ़स को जानते हैं, आशियाँ नहीं मालूम॥

× × ×

हम क्या कहें, किसी से, क्या है तरीक अपना।
मजहब नहीं है कोई मिल्लत नहीं है कोई॥

आतिश-परंपरा के कवि—'रिंद'

'आतिश' की शिष्य परंपरा में भी कुछ मशहूर शायर हुए जिनमें 'रिंद', 'सबा', 'खलील', 'नसीम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

'रिंद' का पूरा नाम नवाब सैयद मुहम्मदखाँ 'रिंद' था। इनका जन्म फैजाबाद में हुआ था और वहीं इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। पहले यह अपनी कविताएँ खलीक को दिखाया करते थे किंतु सन् १८२४ में जब यह लखनऊ आ गए, तो 'आतिश' के शिष्य हुए। इनके दो दीवान हैं। इनकी भाषा मुहावरेदार और शैली सुगम है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

पड़ गई जान किस अजाब में हाय।
चाहता भी बड़ी मुसीबत है॥

× × ×

न खुलवाओ मेरी जुबाँ चुप रहो।
कोई बात मुँह से निकल जाएगी॥

× × ×

धूप दिन की ओस शब की खाइए।
आस्ताने यार पर मर जाइए॥

× × ×

मैं भला क्यों कर कहूँ तुमको बुरा।
आपने जो कुछ किया, अच्छा किया॥

× × ×

हजार बार किया मेरा इम्तिहाँ उसने।
बस आज़मा चुका अब आजमाइएगा क्या॥

'सबा'

मीर वजीरअली 'सबा' का एक बड़ा दीवान 'गुंचए आरजू' है। इसके अलावा एक मसनवी भी उनकी है, जो वाजिदअली शाह के शिकार पर लिखी गई है। स्वाभाविकता, सरसता और सरलता का प्रायः इनकी कविता में अभाव है। इनकी जो कविताएँ शृंगारिक हैं, उनमें कहीं-कहीं अश्लीलता का दोष आ गया है। व्यंग आदि की कविताएँ लिखते समय इन्होंने 'आतिश' की शैली का अनुकरण किया है।

'खलील'

मीर दोस्तअली 'खलील' नवाब नादिर मिर्जा नैशापुरी के के प्रिय मित्र और 'आतिश' के मुख्य शिष्यों में से थे। इनका एक दीवान मिलता है। इनके विचार साधारण कोटि के तथा शृंगार-प्रधान है। इनकी भाषा शुद्ध और मुहावरेदार होते हुए भी अप्रचलित शब्दों की भरमार के कारण बोझिल हो गई है।

'नसीम'

पंडित दयाशंकर कौल 'नसीम' काश्मीरी ब्राह्मण थे और आतिश के प्रसिद्ध शिष्यों में थे। फारसी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद यह नवाब अमजदअली की सेना में मुंशी हुए और कविता की ओर रुचि होने पर 'आतिश' के शिष्य बने। इनकी 'गुलजारे नसीम' नाम की मसनवी सन् १८३२ में प्रकाशित हुई थी। उर्दू साहित्य में इस मसनवी का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कविता प्रवाह, कल्पना, मुहावरों के प्रयोग, तथा उपमा आदि अलंकारों के लिए प्रसिद्ध है। अधिक भाव और विचार थोड़े में भर देना इनकी विशेषता है। 'गुलजारे नसीम' जैसी उत्तम रचना के कारण ही 'नसीम' का नाम अमर हो गया है। इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

नाम मेरा सुनते ही शरमा गए।
तुमने तो खुद आपको रुस्वा किया॥

× × ×

रूहे-खानों-जिस्म की सूरत मैं क्या कहूँ।
झोंका हवा का था इधर आया उधर गया॥

× × ×

जब हो चुकी शराब तो मैं मस्त मर गया।
शीशे के खाली होते ही पैमाना भर गया॥

गर यही है इस गुलिस्तां की हवा।
शाखे गुल एक रोज झोंका खाएगी ॥

'आतिश' और 'नासिख' जैसे कवियों की बदौलत लखनऊ साहित्य-केंद्र का सितारा बुलंद हो गया। इन दोनों की शिष्य परंपरा ने भी इसका पाया मजबूत किया। मुगल सम्राटों की तरह अवध के नवाब भी कविता करने में पीछे नहीं रहे। नवाबों में आसफुद्दौला 'आसफ', सदाअत अलीखाँ, गाजीउद्दीन हैदर, नसीरुद्दीन और वाजिदअली शाह ने उर्दू शायरों को आश्रय ही नहीं दिया, बल्कि खुद भी शायरी की और उर्दू को समृद्ध किया। इनके अतिरिक्त कुछ और भी फुटकर शायर हुए जिनमें 'असर', 'अमानत', 'कल्क', 'अख्तर' तथा 'जकी' आदि का नाम उल्लेखनीय है।

मर्सिया और उसका उर्दू साहित्य में स्थान

मृत व्यक्ति की प्रशंसात्मक स्मृति में लिखे गए शोक-गीत को मर्सिया कहते हैं। मुसलमानों में इस तरह की कृतियों का बहुत आदर होता है। जितना मुसलमानों का धर्म प्राचीन है उससे कम प्राचीन यह मर्सिया नहीं है। कर्बला के युद्ध में हसन और हुसेन आदि मारे गये थे, उन्हीं की याद में प्रायः इस प्रकार की कविता लिखी गई। यह भी संभव है कि उससे पहले भी मर्सिया की परंपरा रही हो, लेकिन उसका प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं है। इतना तो निर्विवाद ही है कि

मुसलमानी धर्म की नींव जिस वक्त पड़ी, उसी समय से हम मर्सिए के भी अस्तित्व को देखते हैं। मुहर्रम के अवसर पर ताजियों के जुलूस के साथ यह गाया जाता है।

प्रारंभ में इस प्रकार की कविता केवल धार्मिक उत्साह उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखी जाती थी और साधारणतयः इसमें पंद्रह-बीस से अधिक शेर नहीं होते थे। इन कविताओं या शोक-गीतों में हृदय का वास्तविक उद्‌गार रहता था और वह करुण रस से ओत-प्रोत होता था। लेकिन पीछे मृत पुरुषों की कोरी प्रशंसा से कवि तृप्त नहीं हो सके और इस तरह मर्सियों की कमी तथा कसीदों की अधिकता होने लगी। करुण रस के लिए हृदय में सच्चा उद्‌गार होना आवश्यक है। लेकिन तब उसका प्रायः अभाव-सा हो गया, जब कि फारसी कविता में शृंगार और प्रेम की प्रधानता हो गई। फिर तो नैसर्गिकता खत्म सी हो चली और ऊपरी दिखावट बढ़ने लगी। वैसी स्थिति में भी यों फिरदौसी, फर्रुखी, सादी तथा खुसरो आदि ने आगे चलकर छोटे-छोटे शोक-गीतों की रचना की, लेकिन उनका कोई विशेष प्रचार न हो सका।

उर्दू साहित्य का तो आरंभ ही दक्षिण में गोलकुन्डा और बीजापुर के दरबारों से होता है। यहाँ के शासक स्वयं शायर थे। और साथ ही शायरों के आश्रयदाता भी। उनकी रचनाओं में मर्सिया को भी स्थान मिला। 'मीर' और 'सौदा' ने भी कहने

भर को मर्सिए लिखे, लेकिन उनके समय के सिकंदर, अमानी, आसिमी मिस्कीं, मीर हसन आदि मशहूर शायर हुए जिन्होंने मर्सियों की रचना की। उस समय मर्सिया का महत्व धार्मिक भावना के कारण अधिक था। कवि लोग कविता का चमत्कार दिखाने के लिये उसकी रचना नहीं करते थे, बल्कि धार्मिक भावना से प्रेरित होकर महज पुण्य हासिल करने के खयाल से करते थे। पहले मर्सिए में चार मिसरे होते थे, पर 'सौदा' ने पहले पहल छः मिसरों के मुसद्दस का मर्सिए में प्रयोग किया, जिसका प्रचार भी हुआ। मीर जमीर ने एक बहुत बड़ा मर्सिया लिखा था, जिसमें शाहजादा अकबर अली के मारे जाने का विवरण है। आरंभ में भूमिका देकर वस्तु-प्रवेश और फिर नखशिख व युद्ध तथा युद्ध-स्थल का वर्णन करने की परिपाटी थी। भाषा को आलंकारिक बनाने पर भी ध्यान दिया था। यही शैली 'अनीस' और 'दबीस' के समय तक पूर्णता को पहुँची। मर्सिया लिखने वालों में जमीर, खलीक, अनीस और दबीर बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

'जमीर'

जमीर—इनका पूरा नाम मीर मुजफ्फर हुसेन 'जमीर' था, यह लखनऊ के रहने वाले थे और मुसहिफी के शिष्य थे। कविता के साथ यह अरबी तथा फारसी के अच्छे ज्ञाता थे।

और धर्म प्रिय होने के साथ विनोद प्रिय भी थे। यद्यपि पहले यह गजलें आदि ही लिखते थे, लेकिन बाद में मृत व्यक्तियों की प्रशंसा में मर्सियों की ही रचना लगे। मीर खलीक इनके समकालीन और प्रतिद्वंद्वी थे। दोनों की प्रतिभा ने समान रूपसे विकास पाया था। उस समय मियाँ दिलगीर और फसीह नाम के दो और भी मर्सिया लिखने वाले थे, जिनमें से एक तो तुतलाहट के कारण मर्सिया नहीं पढ़ते थे और दूसरे हज को गए, तो फिर वहीं निवास करने लगे। यही कारण था कि जमीर और खलीक को मैदान खाली मिला। जमीर विद्वत्ता तथा प्रतिभा के कारण काव्य-वातावरण में अच्छी प्रकार से उड़ाने भर लेते थे। नखशिख, युद्ध तथा युद्ध-स्थल वर्णन आदि का समावेश करके सौ-सौ पद तक के मर्सिये इन्होंने लिखे हैं।

'खलीक'

खलीक—मीर मुस्तहसिन 'खलीक' मीर हसन के पुत्र थे। इन्होंने फैजाबाद और लखनऊ में शिक्षा प्राप्त की थी। सोलह वर्ष की अवस्था में ही यह गजलें बनाने लगे। उन्हीं दिनों मिर्जा तकी 'तरक्की' ने फैजाबाद में कवि-सभा का आयोजन किया था और उसमें 'आतिश' को बुलवाया था। 'आतिश' ने जब खलीक की गजलें सुनीं तो अपनी गजल यह कहते हुए फाड़ डाली कि 'खलीक' जैसे योग्य कवि के होते हुए मुझे बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पिता की मृत्यु के

बाद जब गृहस्थी का कुल भार इन पर आ गया, तब यह अपनी गजलें बेचने लगे। यों उन्होंने पूरा एक दीवान लिख डाला था, फिर भी आगे चलकर यह मर्सिए के लिए ही मशहूर हुए। मीर 'जमीर' के तो यह समकालीन थे ही। भाषा-सौष्ठव, कारुण्य तथा उपयुक्त प्रवाह को लाने में विशेष निपुणता इन्होंने दिखलाई है। अपने मर्सिए यह अक्सर सभाओं में पढ़ते थे। इनका वंश उर्दू के शुद्धतम प्रयोग के लिए प्रसिद्ध था। इनकी रचना का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

गुजरी बहारे उम्र 'खलीक' अब कहेंगे सब।
बागे जहाँ से बुलबुले हिंदोस्ताँ गया॥

'अनीस'

अनीस—मीर बबर अली 'अनीस' फैज़ाबाद के थे और और उनका जन्म सन् १८०२ के लगभग हुआ था। शिक्षा इन्होंने अपने पिता से ही प्राप्त की थी। प्रौढ़ावस्था होने पर यह अपने छोटे भाई 'उन्स' के साथ लखनऊ चले गए और कालांतर से फिर वहीं सपरिवार बस गए। 'अनीस' यद्यपि भारी विद्वान नहीं थे, किंतु उनमें कवित्व शक्ति असाधारण थी। युद्ध-विद्या और घुड़सवारी का भी इन्हें शौक था, जिसके ज्ञान का उपयोग इन्होंने अपनी कविता में किया है। इन्हें अपने वंश का अभिमान बहुत था। कविता इन्हें पुश्तैनी विरासत में मिली थी। कवित्व शक्ति ने इनकी प्रतिष्ठा यहाँ तक बढ़ा दी कि नवाब तहौव्वर

जंग ने इनकी जूतियाँ उठाकर पालकी में रखने में अपना सम्मान समझा था। मर्सिए पढ़ने से ही इन्हें काफी आमदनी हो जाती थी।

अवध की नवाबी का अंत होने पर भी यह कहीं जाना नहीं चाहते थे, फिर भी अंत में इन्हें जाना ही पड़ा। यह दो बार पटना और एक बार हैदराबाद गए, बीच में बनारस और प्रयाग भी गए। सभी जगह इन्होंने मर्सिए सुनाए और सभी जगह इनकी काफी प्रशंसा हुई। ७४ वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हुआ।

'खलीक और 'जमीर' की मृत्यु के बाद 'अनीस' और 'दबीर' इस क्षेत्र में उतरे और इस प्रतिद्वंद्विता ने दोनों की प्रतिभा को विकसित किया। गजलों का सिर्फ इन्होंने एक ही दीवान लिखा है, लेकिन मर्सिए और रुबाइयाँ बहुत लिखी हैं। इनके मर्सिए छै जिल्दों में प्रकाशित हो चुके हैं और अब भी कुछ अप्रकाशित हैं। इनके पूर्वज चूँकि दिल्ली के रहने वाले थे, और कई पीढ़ियों से सुकवि होते आए थे, इसलिए इनके वंश की भाषा उर्दू की टकसाली भाषा मानी जाती थी, जो दिल्ली और लखनऊ दोनों स्थानों में सम्मानित थी। 'नासिख' आदि कई कवियों ने इनके वंश को उर्दू भाषा की टकसाल माना है और उसे सीखने के लिए ये लोग दूसरों को राय भी देते थे। इन्होंने उर्दू भाषा को और भी परिमार्जित

करने का प्रयत्न किया और कितने ही नए शब्द चलाए। इनकी शब्द-योजना बड़ी ही सरल और प्रसादमयी होती थी। कविता का प्रवाह ऐसा सुन्दर होता था कि पढ़ने में कहीं अटक नहीं होती थी।

उर्दू साहित्य में प्रबंध काव्य के रूप में केवल मसनवियाँ प्राप्त थीं और स्फुट रचनाओं का ही प्राधान्य था, पौराणिक महाकाव्यों का तो सर्वथा था ही। कहते हैं, इस कमी को 'अनीस' ने एक हद तक पूरा किया। महाभारत, रामायण या इलियड जैसे ग्रंथों की गुंजाइश उर्दू में थी ही नहीं, क्योंकि उस भाषा का तो जन्म ही रंगीले नवाबों और बादशाहों की छाया में हुआ है, फिर भी 'अनीस' ने युद्धस्थल, सेना, अस्त्र-शस्त्रादि का वर्णन बहुत ही उत्तम किया है। फिरदौसी तथा निजामी के वर्णन से यह कभी घटिया नहीं सिद्ध किए जा सकते।

प्रकृति-चित्रण इनके काव्य में बहुत अच्छा मिलता है। मानवीय स्वभाव के विकारों का भी इनकी कविता में अच्छा विश्लेषण है तथा भाषा पात्रों के अनुकूल है। लखनऊ की चली आती काव्य परंपराओं के विपरीत इन्होंने भाव, अर्थ और शब्द-योजना को प्रधानता देते हुए अलंकारादि का प्रयोग किया है। इसी कारण इनकी कविता का सौंदर्य बढ़ गया है। एक ही बात को बार-बार और नई रीति से कहा गया है, जिसके

कारण उसमें आकर्षण और मनोहरता आ गई है। इतिहास के साथ-साथ इनकी कविता में काल्पनिक घटनाएँ भी समाविष्ट हैं। यह सही है कि ज्यादा लिखनेवाले कवियों की समस्त रचनाएँ एक-सी नहीं होतीं, कुछ उच्च कोटि की होती हैं तो कुछ साधारण कोटि की भी। 'अनीस' इसके अपवाद नहीं हैं। उर्दू साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। यह उर्दू के फिरदौसी समझे जाते हैं।

इनकी कविता का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

हलचल थी कि तलवार चली फौज में सन से।
ढालें तो रही हाथों में सर उड़ गए तन से॥
तायर भी हवा हो गए सब जुल्म के बन से।
आगे था हिरन शेर से औ शेर हिरन से॥

'दबीर'

दबीर—मिर्जा सलामत अली 'दबीर' का जन्म दिल्ली में सन् १८०५ में हुआ था। सात वर्ष की ही अवस्था में यह अपने पिता के साथ आकर लखनऊ बस गए। विद्याप्राप्ति में इनका बड़ा उत्साह था और तर्कशील होने के कारण इनकी बुद्धि बड़ी ही कुशाग्र थी। कविता में यह 'जमीर' के शिष्य हुए और शीघ्र ही विलक्षण कवित्व शक्ति के कारण गुरू के प्रिय शिष्य हो गए। बाईस वर्ष की अवस्था में ही नवाब गाजीउद्दीन हैदर ने इनकी कविता सुनी थी। इससे यह प्रकट होता है

कि अल्प वय में ही इनकी काफी प्रसिद्धि हो गई थी। गाजीउद्दीन हैदर के ही राज्यकाल में लिखे गए 'सुरूर' के 'फिसानए अजायब' में प्रसिद्ध 'मरसियागोओं' में इनका भी नाम दिया गया है। कवि-सभाओं में 'जमीर' इन्हीं को पहले पढ़ने की आज्ञा देते थे और स्वयं बाद में पढ़ते। 'दबीर' का लिखा हुआ एक मरसिया उन्हें इतना पसंद आया कि उन्होंने उसे खुद पढ़ने के लिए ले लिया। लेकिन राज्य-सभा में मित्रों के बहकाने के कारण 'दबीर' ने उसे पहले ही पढ़ डाला। गुरू को इस हरकत से बड़ा सदमा पहुँचा, लेकिन अंत में शीघ्र ही मन मुटाव दूर भी हो गया। 'अनीस' के लखनऊ आने तक 'दबीर' ने अच्छी ख्याति पैदा कर ली थी। इन दोनों की प्रतिद्वंद्विता ने दोनों के ही यश को अधिक उज्जवल कर दिया और कविता को उत्कृष्टतर भी। व्यक्तिगत जीवन में दोनों प्रेमपूर्वक मिलते-जुलते थे। ईर्ष्या-द्वेष से एक दूसरे को गिराने का कभी दोनों ने प्रयत्न नहीं किया। आखिरी दिनों में इनकी आँखें जाती रही थीं, लेकिन नवाब वाजिद अली शाह ने कलकत्ते बुलवाकर इनकी आँखें बनवादी। ७२ वर्ष की आयु में इनका देहांत हुआ।

इन्होंने अपना सारा जीवन मर्सिया लिखने में ही व्यतीत कर दिया। इनके मर्सिए कई जिल्दों में प्रकाशित हो चुके हैं। यह फारसी और अरबी के भी बड़े विद्वान थे और इसी कारण

इनकी कविता में क्लिष्ट शब्द-योजना और अर्थ-गांभीर्य विशेष था। नए भावों का उपयोग करते हुए करुणात्मक व्यंजना, प्रभावशाली शब्दों के प्रयोग और ओजमय वर्णन के लिए यह मशहूर हैं। इनकी कल्पना-शक्ति बढ़ी-चढ़ी थी और इनके पद-प्रवाह में तीव्रता और उद्दंडता थी। कल्पना के जोर से स्थल की उपयुक्तता का विचार न कर, यह बहुत बढ़ाकर कह डालते थे। सौंदर्य-वृद्धि के लिए अरबी मिसरों को मर्सिए में खपा डालने में यह कुशल थे। अति शीघ्रता से अच्छी कविता कर लेने के कारण यह आशुकवि कहे जा सकते हैं। इनकी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ मौलिक और सुंदर होती हैं। उर्दू साहित्य में यह 'अनीस' के समकक्ष माने जाते हैं।

इनकी कविता का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

दुनिया का अजीब कारखाना देखा।
किस किस का न याँ जमाना देखा॥
बरसों रहा जिनके सिर पर छत्रे जरीं।
तुरबत पै न उनके शामियाना देखा॥

'अनीस' और 'दबीर' के समर्थक क्रमशः 'अनीसिए' और 'दबीरिए' कहलाने लगे। 'अनीस' वंश-परंपरा में आगे चलकर और भी कवि हुए, जिन्होंने मर्सिया लिखने में अच्छी ख्याति प्राप्त की। इनमें इनके दो छोटे भाई 'मूनिस' और 'उन्स', पुत्र

'नफीस' और आगे 'आरिफ', 'जलीस', 'रशीद', 'औज' आदि वंशधर प्रसिद्ध हैं।

'मर्सिया'

मर्सिया के संबंध में यह कहा जा चुका है कि यह शोक-गीत होता है। सन् ६८० में कर्बला के युद्ध में अली के पुत्र हुसेन मारे गए थे। इसी घटना को लेकर आगे मर्सिया लिखा जाने लगा। नवाबों की छत्रछाया में मुहर्रम का उत्सव विशेष रूप से मनाया जाता था और उसी में मर्सिए भी पढ़े जाते थे। पहले इनमें शोकोद्गार-मात्र रहता था। बाद में उसमें युद्ध-वर्णन को भी स्थान मिला। फिर उसमें नखशिख का भी समावेश हो गया। 'जमीर' और 'खलीक के दिखलाए मार्ग का अनुसरण करके 'अनीस' और 'दबीर' ने उसे और भी प्रशस्त किया। मुसद्दस का प्रयोग इन्हीं लोगों ने किया जो आगे चलकर प्रकृत कविता का प्रधान साधन हो गया।

मर्सिया धार्मिक कविता है। इसमें शराब, वस्ल, विरह आदि को स्थान नहीं मिला। उर्दू साहित्य में वीर रस की कविता का जो अभाव था, उसे इसने पूरा कर दिया। अश्लील से अश्लील कवि भी जब इस मैदान में आता तो वह धर्म-भाव के कारण धार्मिकता से पूर्ण कविता लिखता था।

उर्दू साहित्य जो स्फुट रचनाओं के लिए ही प्रसिद्ध था,

उसमें मर्सियों के कारण पहले पहल लंबी कविताओं का समावेश हुआ। लाखों पंक्तियाँ लिखकर 'अनीस' तथा 'दबीर' आदि ने शब्दों और मुहावरों के मानों कोश ही तैयार कर डाले। यही मर्सिया आगे चलकर 'हाली', 'आजाद' तथा 'सरूर' आदि की कविता का आदर्श बना। अस्तु, स्पष्ट है उर्दू साहित्य को मर्सिया की देन असाधारण है।

उर्दू नस्र (गद्य) का आरंभ काल

संसार की अन्य सभी भाषाओं के समान उर्दू भाषा का आरंभ भी कविता से होता दिखाई देता है। मनुष्य के हृदयोद्गार स्वभावतः कविता में पहले उबल पड़ते हैं। गंभीर विषय के लिए मनन-विचार के अनंतर गद्य की आवश्यकता होती है। भाव के उदय के बाद ही विचारों का उदय होता है। उर्दू में गद्य का विकास बहुत बाद को हुआ, जैसा कि प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में देखा गया है कि गद्य की रचना बाद में होती है, और प्रारंभ में काफी समय तक कविता लिखी जाती है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से जो उन्नत भाषाएँ मानी जाती हैं और जिनका सब कुछ निज का होता है तथा प्रत्येक वस्तु के लिए जो परावलंबी नहीं हैं, जब उनमें भी यही हाल है, तब उर्दू में, जिसका जन्म ही साहित्यारंभ से होता है, ऐसा नहीं होना ही आश्चर्य की बात होती। जिन दो भाषा-भाषियों के

संपर्क से यह व्यावहारिक माध्यम उत्पन्न हुआ था, उनकी मातृ-भाषाएँ भिन्न थीं, साहित्य दो थे और विचार आदि में भी भिन्नता थी। यह माध्यम केवल दोनों के मिलने पर व्यवहार में आता था। ऐसी अवस्था में उसमें कुछ भी साहित्य न होता, यदि यह संपर्क शीघ्र ही टूट जाता। पर यह समय के साथ-साथ दृढ़तर होता गया और क्रमशः यह माध्यम का एक रूप धारण करने लगा। बहुत दिनों तक दोनों अपनी-अपनी भाषा में अपने-अपने उद्गार प्रकट करते रहे, पर धीरे-धीरे उन्हीं में से जिनको इस माध्यम में अपनी मातृभाषा से अधिक सरलता प्रतीत हुई थी, वे इसमें भी कुछ-कुछ लिखने लगे। साहित्य के आरंभ का मूल कारण प्रेम, भक्ति या समाजगत होता है और किसी देश की सभ्यता के आरंभ में इन्हीं से विशेष उत्साह तथा उत्तेजना मिलती है, जिसका उद्गार पहले-पहल कविता के रूप में निकल पड़ता है।

उर्दू का आरंभ दो सभ्य जातियों के संपर्क से हुआ, अतः जिस जाति (मुसलमान) ने इसे विशेष रूप से अपनाया, उसी के पुराने साहित्य का रंग इस पर पूर्ण रूप से आना स्वभाव-सिद्ध था। इस जाति का धर्म भी उस समय नया ही था और उसके प्रचार की उत्तेजना भी इसमें अधिक थी। जिससे उसके धर्म के फकीरों के उपदेश, जीवनी आदि उस भाषा में लिखी जाने लगी, जो उस समय एक प्रकार से माध्यम

का काम कर रही थी। इस विचार से ऐसा ज्ञात होता है कि उर्दू के प्राचीन इतिहास को पूरी तौर पर देख जाने पर भी शायद ऐसा न मिले कि गद्य का प्रारंभ पद्य से पहले हुआ। इसके लिए उत्तरी भारत में खोज करना व्यर्थ है, क्योंकि वहाँ हिंदुओं में संस्कृत तथा हिंदी का और मुसलमानों के बीच फारसी का ऐसा स्थिर वातावरण था कि उसमें एक नए माध्यम के पर फड़फड़ाने का अवकाश ही नहीं था। यहाँ तो मुगल साम्राज्य के अंत तक गद्य में फारसी का ही चलन था। साहित्य विषयादि गहन विषय की तो बात ही दूसरी है, पत्र लेखन, भूमिका, संग्रह, सरकारी कार्यवाही आदि सभी फारसी में लिखी जाती थी। उर्दू के कविगण भी फारसी के विद्वान थे और वे उर्दू का प्रयोग केवल कविता में करते थे। यदि उन्हें गद्य लिखना होता था, तो वे उसे फारसी में ही लिखते थे और उन्हें अपनी फारसी की रचना पर ही विशेष अभिमान रहता था।

यों गद्य-साहित्य का आरंभ दिल्ली और लखनऊ में हो गया था, परंतु उसका पूर्ण विकास कलकत्ते में हुआ। जब कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज स्थापित हुआ, तब ईसवी की अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में यहाँ गिलक्राइस्ट साहब की अधीनता में अनेक हिंदी और उर्दू के विद्वानों ने गद्य का स्वरूप निर्धारित करना आरंभ किया। ऐसा करने का मुख्य

कारण यही था कि विलायत से नए आए हुए यूरोपियन अफसरों के लिए शिक्षा की पुस्तकें तैयार हों, जिससे वे देश की भाषा से स्वतः परिचित हो सकें। इसी उद्देश्य से उस समय के फारसी के अच्छे-अच्छे विद्वान वहाँ एकत्र किए। उनकी गद्य-भाषा भी ऐसी उत्तम और आदर्श भाषा थी कि अब तक उससे आगे कोई नहीं बढ़ सका है।

कोश-व्याकरण की रचना

डा० गिलक्राइस्ट ने उर्दू के कोश तथा व्याकरण पहले पहल तैयार कराए थे। व्याकरण की दृष्टि से यद्यपि 'दरियाए लताफत' को प्रथम स्थान मिलता है, परंतु उसका महत्व केवल ऐतिहासिक दृष्टि से तथा समकालीन बोलचाल की भाषा के नमूने के तौर पर ही विशेष है। इसी समय जहूरी और बेदिल के फारसी गद्य का दिल्ली और लखनऊ में प्रचार हो रहा था, जिसमें रूपक तथा उपमा आदि अलंकार की खूब छटा दिखलाई जाती थी। यह तुकबाजी बड़े-बड़े वाक्यों में ऐसी पीछे पड़ जाती थी कि अर्थ का पता जल्दी नहीं मिलता था। फारसी के 'नस्रे मुरस्या' तथा 'नस्रे मुसज्जा' की नकल उर्दू में भी होने लगी। इस प्रकार के गद्य के लेखकों में पहला नाम सरूर का है, जिनका 'फिसानए अजायब' इसका सर्वोत्तम नमूना है।

गालिब के पत्रों का संग्रह 'उर्दूए मुअल्ला' और 'उदर

हिंदी' का गद्य इस प्रवृत्ति के विरुद्ध सादगी, आडंबर शून्यता, विनोद तथा गांभीर्य के लिए प्रसिद्ध है। समय का अनुकरण करते हुए उन्होंने कभी-कभी तुकबंदी भी की है, पर वह उसके विरोधी अवश्य रहे। ईसाई पादरियों ने भी आरंभ में बाइबिल आदि के अनुवाद उर्दू में कराए थे और मुफ्त बाँटे थे। उर्दू में ही और भी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ छपवाकर उर्दू के प्रचार में इन लोगों ने हाथ बँटाया था। सर सैयद अहमदखाँ के उत्साहपूर्ण धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा शिक्षा-विषयक कार्यों से भी उर्दू को विशेष रूप से सहायता पहुँची। इनके सहकारियों तथा मित्रों ने, जिनमें हाली, शिबली, जकाउल्ला, नजीर अहमद आदि थे, उर्दू साहित्य के भंडार को परिपूर्ण करने में पूरा योग दिया था। पाश्चात्य ज्ञान का प्रभाव भी अब पूर्ण रूप से उर्दू-साहित्य पर पड़ने लगा, जिससे आलोचना, विज्ञान आदि पर पुस्तकें लिखी जाने लगीं।

अब तक के अन्वेषण में कोई विशेष महत्व के गद्य नहीं प्राप्त हुए हैं, पर खोज जारी है और जब तक प्राचीन उर्दू गद्य का सविस्तार इतिहास तैयार नहीं होता, जब तक इस विषय पर विशेष नहीं लिखा जा सकता। प्राप्त प्राचीन गद्य साहित्य सूफी साधुओं तथा फकीरों की कहावतों व उपदेशों अदि का संग्रह है। ये छोटे-छोटे रिसाले हैं। शेख ऐनुदीन गंजुल् इस्लाम (मृत्यु सन् १३३२) की रचनाएँ धार्मिक हैं। ख्वाजा बंदे

निवाज हजरत सैयद गेसूदराज ने 'निशातुल् इश्क' का अनुवाद 'मेराजुल् आशिकी' के नाम से किया है। बीजापुर के शाह 'मीरन जी शम्शुल् उश्शाक प्रसिद्ध सूफी फकीर थे, जिन्होंने सूफीमत की कोई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी हैं। इन्हीं में दो का नाम 'जल तरंग' और 'गुलबास' है। सन् १६३५ ई० में मौलाना वजीद ने 'सबरस' लिखा। सन् १६७७ ई० में मीयन याकूब ने 'शमयलुल् इनकियाद' दलायलुल इनकियाद' लिखा, जिसकी भाषा सरल दक्षिणी है।

इसी प्रकार सत्रहवीं में रायचूर के सैयदशाह मुहम्मद कादिरी और सैयद शाहमीर ने धर्म पर कई पुस्तकें लिखीं। इस प्रकार अभी तक यही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उर्दू गद्य का आरंभ चौदहवीं शताब्दी के अंत में हुआ है।

उर्दू की एक विशेषता यह मानी जाती है कि यह एक ऐसी भाषा है जो स्वच्छता, माधुर्य, और आशय प्रकट करने के लिए सिद्ध है। यह एक सभ्य भाषा है और इसमें अति सूक्ष्म विचार भी प्रकट हो सकते हैं। इसमें अरबी, फारसी, तुर्की तथा संस्कृत जैसी अन्य भाषाओं के विशेष शब्द और अक्षर मिले-जुले हैं। अतः कुछ लोगों की तो यह राय है कि उर्दू अन्य भाषाओं की अपेक्षा शिक्षा का माध्यम बनने तथा सभ्यता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक उपयुक्त है।

हिंदू और मुसलमान दोनों ने अपनी-अपनी जातीय और

और देशी भाषाओं को छोड़कर एक तीसरी भाषा अंगीकृत करके परस्पर-मेल मिलाप का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है। और यह भाषा यद्यपि हिंदुस्तान में पैदा हुई, फिर भी विदेशी साधनों से इसकी उन्नति और अभिवृद्धि हुई, अतः इससे बढ़कर मेल-मिलाप का कोई और साधन न उस समय था और न अब है।

उर्दू एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है और इसमें अन्य भाषाओं के बहुत से नए शब्द मिल जाने से एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि अब इसमें नए-नए शब्द और परिभाषाएँ बनाने में अपेक्षाकृत सुविधा रहती है।

उर्दू-गद्य-साहित्य का विकास-काल

किसी भी भाषा का इतिहास लिखते वक्त यह तय करना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि उसके गद्य का प्रारंभ कब, कैसे और किससे हुआ। क्योंकि जिस तरह पद्य लोगों दिलों और जबानों पर बैठ जाता है, उस तरह गद्य नहीं। और चूँकि गद्य के इतिहास का ठीक - ठीक पता नहीं लगता है इसलिए विद्वानों ने इस सम्मति पर स्वीकृति की मुहर लगा दी है कि साहित्य का प्रारंभ कविता से हुआ करता है। लेकिन यह बिल्कुल साफ है कि नज्म बनाने की जरूरत महसूस होने से पहले या उसमें चलने-फिरने की शक्ति आ जाने से पहले कोई इंसान बिना बात किए हुए चुपचा

जिंदगी नहीं बसर कर सकता। किस्से-कहानियाँ कहने और खत पत्र लिखने की जरूरत आदमी के साथ ही जन्म लेती है। क्या यह कहा जा सकता है कि कुली कुतुबशाह या अमीर खुसरों से पहले लोग किस्से कहानियाँ नहीं सुनते-सुनाते थे या खतो-किताबत नहीं करते थे।

एक दूसरी बात भी है, जो इससे संबंधित है और काफी महत्व रखती है। वह यह कि आदमी सच्ची कविता तभी करता है जब उसके भाव बेकाबू होकर उमड़ पड़ते हैं और उन्हें जाहिर करने के लिए उसके पास आपसे आप जरूरी अलफाज हो जाते हैं। लेकिन गद्य तो हवा और पानी की तरह आदमी के लिए उसी दिन से जरूरी हो गया, जबसे उसने बोलना सीखा।

जो हो, उर्दू-गद्य के जो पुराने से पुराने नमूने इस वक्त तक मिल सके हैं, उनसे पता चलता है कि उर्दू-गद्य का इतिहास ईसा की चौदहवीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। यह तो हुई उर्दू गद्य के प्रारंभ की बात। अब उसके विकास-क्रम पर संक्षेप में विचार करना है।

फोर्ट विलियम कालेज द्वारा उर्दू सेवा

जब अँग्रेजी सल्तनत यहाँ पूरी तरह जम गई तब दूसरी जबानों की तरह उर्दू की तरफ भी काफी तवज्जुह की गई।

अँग्रेज शासक यह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक हाकिम लोग अपने शासितों की जबान न सीख लें, तब तक उनके दिलों पर वह काबू नहीं पा सकते। हिंदुस्तान को पूरी तरह परतंत्र बनाने के लिए यह जरूरी था कि उस पर अँग्रेजी भाषा का शिकंजा कसा जाए। लेकिन इस काम के लिए यह अत्यंत आवश्यक था कि सबसे पहले खुद अँग्रेज लोग देशी भाषाओं से परिचित हो जाएँ। खास इसी खयाल से सन् १८०० ई० में कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की गई। शायद अँग्रेजों ने ऐसा भी सोचा हो कि जब हम यहाँ के शासक बन गए हैं, तो यहाँ की जनता की भलाई, शिक्षा और उन्नति की जिम्मेदारी भी हमारे ही ऊपर है। इसलिए देशी भाषाओं के साथ-साथ देश में अँग्रेजी शिक्षा का भी प्रारंभ किया गया। इस बात का परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर अँग्रेजी शिक्षा का उर्दू भाषा के रूप रंग पर भी काफी प्रभाव पड़ा।

असल में देखा जाए तो फोर्ट विलियम कालेज ने ही उर्दू गद्य और नए जमाने के उर्दू-साहित्य की नींव डाली। उर्दू साहित्य के गद्य-रूप का प्रारंभ तभी सुचारु रूप से हुआ जब उर्दू भाषा की विधिवत् पढ़ाई विद्यालयों में प्रारंभ हो गई। इस प्रकार धीरे-धीरे उर्दू की वह आलीशान इमारत तैयार हो गई जिसे देखकर देखनेवाला हैरत में आ जाता है कि इतने कम वक्त में इतनी बड़ी और इतनी खूबसूरत इमारत

कैसे खड़ी हो गई। ताज्जुब की बात है कि इसके बनाने में हिंदू और मुसलमानों ने एक दिल से और एक विचार से काम किया। इस मंदिर के कारीगरों और पुजारियों में सिर्फ हिंदू और मुसलमान ही नहीं, बल्कि यूरोप के ईसाई भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए डा० जान गिलक्राइस्ट, कैप्टेन रोबक, डा० हंटर, कैप्टेन टेलर आदि की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं।

डा० जान गिलक्राइस्ट, लल्लू लाल, अम्मन, सदल मिश्र, अफसोस, हुसेनी, लुत्फ, मदारी लाल, वेणी नारायण, 'जहाँ', हैदरी, जवान, मौ० इमामबख्श, सहबाई, मुंशी करीमुद्दीन, मुंशी निहालचंद, शाह अब्दुल कादिर, सितारे हिंद इकराम अलीखाँ आदि लेखकों और अनुवादकों का नाम फोर्ट विलियम कालेज से विशेष रूप से संबंधित है।

इनमें से बहुत से लोग ऐसे हैं, जिन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं की सेवा की। कुछ तो ऐसे हैं, जिन्होंने सिर्फ दरसी किताबों तक ही जाना पसंद किया। बाकी ऐसे हैं, जिनका काम अरबी, फारसी, संस्कृत, अँग्रेजी आदि अन्य देशो व विदेशी भाषाओं से अनुवाद करना था। इस जमाने में मौलिक किताबें बहुत कम लिखी गईं। लेकिन यहाँ जो स्रोत एक बार फूट निकला, वह थोड़े ही समय में सारे उत्तरी भारत में फैल गया और उसमें से नए-नए ढंग की किताबें आए दिन निकलने लगीं।

ईसाई-पादरियों की उर्दू-सेवा

इस युग में पादरियों का भी बड़ा दौरदौरा था। वे हिंदू-मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकों पर आपत्ति करते थे और हिंदू तथा मुसलमान उन्हें उनके तर्कों का उत्तर देते थे। इस तरह भी बहुत सी पुस्तकें लिखी गईं। कुरान शरीफ का अनुवाद भी आसान उर्दू में करने का प्रयत्न किया गया। अँग्रेज पादरी भी चूँकि अपनी बातों का प्रचार साधारण जनता में करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने आमफ़हम और आसान उर्दू में पैंफ्लेट छपवाकर बँटवाए। इस प्रकार के पैंफ्लेटों से हालाँकि अदबी जबान की कोई खास तरक्की नहीं हुई, मगर फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि जो मंदिर आगे चलकर खड़ा हुआ, उसकी बुनियाद को मजबूत बनाने में पादरियों का भी कुछ न कुछ हाथ जरूर था। इनकी देखादेखी और भी बहुत से मतों के प्रचारकों ने भी आसान भाषा में पर्चे निकालना प्रारंभ किया जिससे साहित्यिक लोगों के दिमाग में यह बात जम गई कि अगर हम अपनी बातें जनता को समझाना चाहते हैं, तो ऐसी भाषा के प्रयोग की आवश्यकता को समझना चाहिए, जो अधिक से अधिक लोग सरलता पूर्वक समझ सकें।

× × ×

अँग्रेजों ने व्यापारिक संबंधों के सिलसिले में भारत वर्ष

के बड़े-बड़े भू-भाग प्राप्त कर लिए थे जिनके सुप्रबंध के लिए यह आवश्यक था कि उनके कर्मचारी वहाँ की भाषा को अच्छी तरह समझने लगें। व्यापारिक संबंधों के बाद में कम हो जाने पर प्रबंध का काम बढ़ता जाता था। दुभाषिए, जिनके द्वारा यहाँ की भाषा अँग्रेजी कर्मचारी समझ सकते थे अब बेकार हो गए, क्योंकि यह विचार पैदा हो गया था कि अब कोई जाति जब तक अपनी प्रजा की भाषा, रस्मोरिवाज और उनके ऐतिहासिक तथ्यों तथा धार्मिक परंपराओं से अच्छी तरह परिचित न हो, तब तक उन पर पूरी तौर से शासन करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। इसलिए यह आवश्यक था कि अधिकारीगण अपनी प्रजा की भाषा सीख लें।

इसी आवश्यकता को देखकर और यह समझकर कि कंपनी के कर्मचारी, हिंदुस्तान में अपना कर्तव्य, केवल देशी भाषाओं के न जानने के कारण ठीक तरह से नहीं पालन कर पाते हैं, कंपनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने यह आज्ञा दी कि उनके कर्मचारियों को देशी भाषाएँ अवश्य जाननी चाहिएँ। इसी समय इस देश के बड़े-बड़े भू-भाग अँग्रेजी राज्य में सम्मिलित होते जा रहे थे। अतः शासकों द्वारा यह अनुभव किया जाने लगा था कि अब प्रजा की सभी तरह की उन्नति का पूरा उत्तर-दायित्व उन्हीं पर है।

उसी उद्देश्य से अब इस बात का उद्योग होने लगा कि

शिक्षा-प्रचार में जो रुकावट गृहयुद्ध और मुल्की लड़ाइयों के कारण हो गई थी, दूर कर दी जाए। इस विचार के आधार पर अँग्रेजी शिक्षा आरंभ हुई, जिससे लोगों के विचारों और भाषा में घोर परिवर्तन हुआ। इसका प्रभाव कहीं पद्य और कहीं गद्य पर भी पड़ा।

सारांश यह कि अँग्रेजी शिक्षा ने इस देश के लिए वही किया जो अब से पाँच-छै सौ वर्ष पहले यूरोप में पुनर्जागृति ने किया था। यह स्वाभाविक रहता है कि अनेक अच्छाइयों के साथ कुछ बुराइयाँ भी आ जाती हैं। लेकिन इस दशा में अच्छाइयों का पलड़ा भारी रहा। अर्थात् इससे देशी भाषाओं को अधिक लाभ हुआ।

डा० जान गिलक्राइस्ट की उर्दू सेवा

डा० जान गिलक्राइस्ट, जो उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के मुख्य अधिष्ठाता थे, उर्दू के पोषक कहलाने के अधिकारी हैं। उन्हीं के अथक उद्योग से उर्दू परिपूर्ण होकर फारसी के स्थान पर सरकारी भाषा बनने के योग्य हुई। उक्त डाक्टर साहब, स्काटलैंड के निवासी थे। वह सन् १७५९ ई० में एडिनबरा में पैदा हुये थे और अपने नगर के जार्ज हैरियट के अस्पताल में शिक्षा पाकर सन् १७७३ ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी में डाक्टर के पद पर नियुक्त होकर काम

करने लगे थे। आरंभ से ही उनका पक्का विचार था कि अंग्रेजी अफसरों को हिंदुस्तान में फारसी जानने की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी देशी भाषाओं और विशेष रूपसे हिंदुस्तानी की, जो उस समय हर प्रकार के लोगों के मेल जोल की सबसे प्रसिद्ध भाषा समझी जाती थी। वह स्वयं इस दिशा में अग्रसर हुए। उनके विषय गें यह कहा जाता है कि वह स्वयं हिंदुस्तानी कपड़े पहनकर उन स्थानों पर घूमा करते थे, जहाँ मुहावरेदार शुद्ध उर्दू बोली जाती थी। इसके अतिरिक्त वह संस्कृत, फारसी तथा अन्य पूर्वी भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता था। उनकी सफलता देखकर कंपनी के अन्य कर्मचारियों को भी उर्दू सीखने का शौक हुआ। सारांश यह कि अँग्रेजों में उसी समय से उर्दू पढ़ने का रिवाज हुआ। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली ने इस योजना के महत्व और जरूरत को समझकर तथा गिलक्राइस्ट के कामों का उयोगी परिणाम देखकर, उनको बहुत आर्थिक सहायता दी और उनको फोर्ट विलियम कालेज का उच्च पदाधिकारी नियुक्त कर दिया। यह कालेज सन् १८०० ई० में स्थापित हुआ। इसका उद्देश्य यह था कि कंपनी के अँग्रेज नौकरों को देशी भाषाओं में शिक्षा दी जाये।

गिलक्राइस्ट महोदय अधिक दिनों तक इस कालेज में नहीं रहे। बीमारी के कारण सन् १८०४ ई० में पेंशन लेकर विलायत चले गए। उनको उर्दू से इतना प्रेम था कि सन् १८१६ ई०

में वह एडिनबरा से लंदन आ गए और वहाँ सिविल सर्विस के उम्मीदवारों को निजी तौर पर पूर्वी भाषाओं की शिक्षा देने लगे।

सन् १८१२ ई० में वह ओरियंटल इंस्टीट्यूट में उर्दू भाषा के प्रोफेसर हो गये, जिसको उसी वर्ष कंपनी ने लंदन में स्थापित किया था। लेकिन वह संस्था सन् १८२५ ई० में बंद हो गई। उसके बाद भी वह लगभग एक वर्ष तक उर्दू पढ़ना चाहने वालों को निजी तौर पर पढ़ाते रहे और अपने स्थान पर सेंटफोर्ड आरनो और टंकन फौरबेस को नियुक्त कर गए।

डा० जान साहब ने उर्दू और हिंदी दोनों जबानों पर इतने अहसान किए हैं कि जब तक ये जबानें दुनिया में रहेंगी उन्हें याद करती रहेंगी। खासकर उर्दू की शिक्षा और उन्नति के लिए जान साहब ने जो कोशिशें कीं, उन्हें देखकर यह कहना पड़ता है कि वह उर्दू गद्य के पिता' कहलाने के सचमुच अधिकारी हैं। उन्हों के अकथ परिश्रम से उर्दू ने मुकम्मिल होकर 'सरकार की जबान' का दर्जा हासिल कर लिया।

इनके बारे में ऊपर कहा जा चुका है कि यह हिंदुस्तानी कपड़े पहनकर उन मुकामों में, जहाँ बहुत सही और बमुहावरा उर्दू बोली जाती थी, बराबर घूमा करते थे। मगर ताज्जुब की

बात तो यह है कि किसी को शुबहा तक न होता था कि जनाब की जबान उर्दू नहीं है।

इन्होंने सैकड़ों किताबें यहाँ के आलिमों से तैयार करवाईं, जिनसे उर्दू-साहित्य का खजाना मालामाल होने लगा। खुद इन्होंने भी बहुत-सी किताबें जबान के मुताल्लिक लिखी हैं, जिनसे बहुत से नए विद्यार्थी अब भी लाभ उठा सकते हैं। अँग्रेजी हिंदुस्तानी डिक्शनरी, ओरियेंटल लिंग्वैस्टिक, हिंदुस्तानी ग्रामर, हिंदुस्तानी फिललाजी आदि इनकी मशहूर रचनाएँ हैं। गिलक्राइस्ट के ही सुप्रबंध में अनेक हिंदुस्तानी विद्वान कालेज में नियुक्त हो गये थे, जिन्होंने न केवल अँग्रेजों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखीं, बल्कि उर्दू और हिंदी में अनेक उच्चकोटि की साहित्यिक पुस्तकों का निर्माण किया। मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के बाद कुछ प्रसिद्ध भाषा-विद् और लेखक अपना घर छोड़कर गिलक्राइस्ट के उदारतापूर्ण संरक्षण की बात सुनकर कलकत्ते पहुँचे थे, उनको भी उक्त कालेज में स्थान मिल गया था।

संक्षिप्त टिप्पणियाँ

रेख्ती

हिंदी कविता की भाषा अथवा काव्य-भाषा जनानी बोली अर्थात् स्त्रियों की बोली में नहीं होती थी, पर रेख्ती का तात्पर्य

इसी से है। स्त्रियों की भाषा प्रायः प्राचीनता लिए होती है क्योंकि अशिक्षा, पर्दे आदि के कारण समय के साथ वे भाषा के मुहावरे आदि के परिवर्तन को उतनी शीघ्रता से नहीं ग्रहण कर लेतीं, जितनी कि पुरुष। इससे इनकी भाषा में पुरानापन रहना अनिवार्य है। कुछ ऐसे भी शब्द होते हैं, जिनका प्रयोग भी वे ही करती हैं और कुछ शब्द तो वे स्वयं उस अर्थ के द्योतक रूप में बना लेती हैं, जिन्हें वे लज्जा आदि के वश स्पष्ट नहीं कह सकतीं।

भाषा की इसी भिन्नता को लेकर अश्लीलता, हँसी, तथा विषय-वासना के रंग में रँगकर कई कवियों ने उसे समाज के सामने रखा। कुरुचिपूर्ण पुस्तकों का कुछ विशेष प्रचार होता ही है और उस समाज में, विशेषकर लखनऊ तथा दिल्ली के गिरते हुए मुसलमानी राज्यों में जहाँ वेश्याएँ आदि विपय-वासना धन की एक मर्यादा हो गई थी। इससे उस समय लोगों में इसका प्रचार काफी हुआ। इसके सबसे बड़े उस्ताद मीर यार अली खाँ जान साहब हुए। 'रंगी' रेख्ती कविता के आविष्कारक माने जाते हैं। सैयद इंशा और रंगी की रेख्ती निज का अस्तित्व रखती है।

गजल

गजल का अर्थ है जवानी का हाल बयान करना अथवा माशूक के संगीत और इश्क का जिक्र करना। इसीलिए इनमें

प्रेम के भिन्न भिन्न शेर लाने का नियम रखा गया है। किसी शेर में आशिक अपनी मनोवेदना प्रकट करता है जिससे माशूक पर उसका कुछ प्रभाव पड़े। किसी शेर में वह माशूक की प्रशंसा करता है, जिससे वह प्रसन्न हो, किसी शेर में वह माशूक की वफा और जफा का जिक्र करता है, और किसी में रकीब की शिकायत करता है। मतलब यह है कि जिस बात के कहने से माशूक के प्रसन्न होने या किसी खास नतीजे के निकलने की आशा होती है, वही बात गजलों में आती है। कभी-कभी सौंदर्य, प्राकृतिक छटा, और वैराग्य की बातें भी गजलों में आती हैं। अब तो देश-भक्ति की बातें भी गजलों में कहीं जाने लगी हैं, क्योंकि गजलों का स्वर लोकप्रिय हो गया है। इसलिए उर्दू-शायर गजलों में देश-सेवा का काम भी लेने लगे हैं।

गजलों का जन्म चर्चा के लिए ही हुआ था। अरब में गजल नाम का एक आदमी था। उसने अपनी सारी उम्र इश्क करने में बिता दी। वह सदा इश्क और हुस्न की बातें किया करता था। उन्हीं विषयों के शेर पढ़ा करता था। उसी समय से जिस कविता में इश्क और हुस्न का जिक्र हो उसे लोग गजल की याद में गजल कहने लगे।

आज कल गजलों का बहुत प्रचार है। मुशायरों में तो सिर्फ गजलें ही पढ़ी जाती हैं। थियेटरों में भी गजलों का

बोलबाला है। आजकल सभा-समाजों में भी स्वदेशी गजलों का अधिकार हो गया है। अब तो हिंदी-भाषा के कवि भी हिंदी में गजल लिखने लगे हैं।

गजल में शेर की संख्या का साधारण नियम यह है कि एक गजल में पाँच से कम और ग्यारह से अधिक शेर नहीं होने चाहिएँ। परंतु पुराने शायरों ने कम से कम तीन शेर और अधिक से अधिक पचीस शेर तक की गजलें मानी हैं। आज कल सत्रह, उन्नीस, इक्कीस शेर तक गजलें लिखी जाती हैं। यदि कोई कवि गजल के नियमों की पाबंदी और मुहावरों का उचित प्रयोग करता हुआ पचास शेर की गजल लिखे तो वह उसके लिए गौरव की बात है, नियम की अवहेलना नहीं।

शेर

शेर अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है बाल। सौंदर्य के लिए बाल आवश्यक वस्तु है। सुंदर चेहरे पर जुल्फ या लट व अलक का लहराना कितना मनोहर होता है यह मनुष्य जाति से छिपा नहीं। बालों से सुंदरता खिल उठती है। प्रेमिका कितनी ही सुन्दरी हो, सिर मुड़ाए हो, तो वह प्रेमी को पसंद नहीं आ सकती। शेर का भी यही हाल है। कविता सुंदरी है, शेर उसके केश है, साहित्य माशूक है। साहित्यिक परिभाषा में शेर एक साँचा है, जिसमें विचार ढाले जाते हैं।

ढालने वाला शायर कहलाता है। शेर की मिशाल भौंह से दी जाती है। क्योंकि माशूक के चेहरे पर दो भवें एक शेर के दो मिसरों की तरह होती हैं। लुगत (कोश) में शेर का अर्थ जानना भी होता है।

काफिया-रदीफ

'काफिया' को हिंदी में तुक कहते हैं। हिंदी की तरह उर्दू में तुक मिलाने की कड़ाई नहीं है। उर्दू में 'लगा', 'सदा', 'दुआ', 'बजा' का भी तुक मिला हुआ समझा जाता है। क्योंकि इन शब्दों के अंत में 'आ' है। 'रदीफ' काफिए के बाद आती है और शेरों में अपनी जगह पर कायम रहती है, कभी बदलती नहीं। जैसे—

इशरते कतरा है दरिया में फना हो जाना।
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना॥

इधर 'फना' और 'दवा' काफिया और 'हो जाना' रदीफ है। यह रदीफ, 'हो जाना' सारी गजल के प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में आएगा। कभी-कभी एक अक्षर की रदीफ होती है और कभी-कभी आधे से अधिक मिसरा (मिसरा एक चरण या एक पंक्ति को कहते हैं) तक रदीफ हो जाता है। जैसे—

मुझे तो प्यार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।
वो बुत बेजार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता॥

कसीदा

कसीदा उन शेरों को कहते हैं जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा हो। जैसे गजल के लिए प्रेम की रीति-प्रकार से जानकार होना आवश्यक है, वैसे ही कसीदे के लिए दरबारी कायदे - कानून और लोक-व्यवहार से भिज्ञ होना जरूरी है, जिससे शायर प्रत्येक विषय का ठीक-ठीक वर्णन कर सके, कोई भी बात मर्यादा से बाहर न जा सके।

गालिब कहते हैं कि जो शायर कसीदा नहीं लिख सकता उसकी गिनती शायरों में करनी ही नहीं चाहिए। बात बिलकुल सच है। कसीदे से ही कवि की बहुज्ञता का पता चलता है उर्दू में सौदा, इंशा और जौक कसीदा लिखने में सिद्ध-हस्त रहे हैं।

रुबाई

रुबाई चार मिसरों का छंद है। इसमें नीति या उपदेश की बड़ी-बड़ी बातें थोड़े शब्दों में सुन्दर, मुहावरेदार भाषा में कही जाती हैं। अरबी और फारसी में रुबाइयों का बड़ा प्रचार है। फारसी में उमर खैय्याम की रुबाइयाँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि संसार की प्रायः सभी भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं।

मसनवी

किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के पद्य-बद्ध जीवन-वृतांत या कल्पित

कथा को 'मसनवी' कहते हैं। मसनवी उर्दू में बहुत कम हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध मसनवी 'गुलजारे नसीम' है, जो पं० दयाशंकर 'नसीम' की लिखी हुई हैं। फारसी में शाहनामा, सिकंदर नामा, यूसुफ-जुलेखा नाम की मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

मुसद्दस

मुसद्दस (षट्पदी) में तीन-तीन शेरों का एक बंद मिलकर मुसद्दस होता है। हर बंद में पहले चार मिसरे का काफिया एक होता है। मर्सिए मुसद्दस में ही लिखे जाते हैं। हाली, शिबली, तथा चकबस्त के मुसद्दस मशहूर हैं।

एक मुसद्दस यहाँ उदाहरण-स्वरूप दिया जा रहा है—

यह दाग वह नहीं, मिट जाये जो मिटाने से।
यह दर्द वह नहीं, दब जाये जो दबाने से॥
यह आग वह नहीं, बुझ जाये जो बुझाने से॥
चिता जलाई तो उनसर लगे ठिकाने से॥
अगिन-अगिन में मिली, जल में जल, हुए सब पाक।
हवा-हवा में, खला में खला, व खाक में खाक॥

यूसुफ-जुलेखा

यूसुफ कनान देश के रहनेवाले मुसलमानों के एक पैगंबर थे। वह इतने सुन्दर थे कि कहा जाता है कि संसार की तीन-

चौथाई सुन्दरता उन्हें मिली थी और बाकी एक चौथाई सारे संसार में बँट गई थी। यूसुफ के भाइयों ने इन्हें कुएँ में ढकेल दिया था। कुछ व्यापारी इन्हें निकालकर मिस्र के बाजार में ले गये। मिस्र की रानी जुलेखा इन पर मोहित हो गई। उसने इन्हें खरीदकर अपने वश में करना चाहा। यह न माने तो इन्हें जेल में डाल दिया गया। जब मिस्र का राजा मर गया तो इन्होंने जुलेखा से शादी करली और वहाँ के राजा बन गये। यह समाचार जब इनके पिता को मालूम हुआ, तो बूढ़े की आँखों में फिर से नूर आ गया। फारसी - साहित्य में यूसुफ-जुलेखा की प्रेम कहानी बहुत प्रसिद्ध है। उर्दू कवि माशूक को भी सुन्दरता और भाग्य की खूबी के लिये यूसुफ कहते हैं।

मंसूर

ईरान देश का ज्ञानी मंसूर सूफी मत का प्रवर्तक था। उसे 'अनलहक' का ज्ञान हो गया था। मौलवियों ने उसे काफिर कहकर शूली पर चढ़ा दिया।

ढ़ा मंसूर सूली पर पुकार इश्क बाजों को।
ं उनके दर का जीना है चढ़ आये जिसका जी चाहे ॥

कहा जाता है कि मंसूर अंत तक अपनी बात पर डटा रहा। उसकी दृढ़ता की तारीफ उर्दू के शायर किया करते थे।

'अकबर' ने लिखा है—

खुदा बनता था मंसूर इसलिये मुश्किल ये पेश आई।
न चढ़ता दार पर साबित अगर करता खुदा होना ॥

मुहम्मद कुली कुतुबशाह

सन् १५८० ई० में मुहम्मद कुली कुतुबशाह बहमनी राज्य का सुलतान बना। इसी ने भागनगर नामक एक नया नगर बसाया जो आजकल हैदराबाद के नाम से मशहूर है। मुहम्मद कुली स्वयं एक कवि था। कविता में वह अपना उपनाम 'कुतबा' और 'मुआनी' रखता था। यह पहला उर्दू का कवि है, जिसने फारसी ढंग पर दीवान लिखा है। अभी तक उर्दू का प्रथम कवि तथा प्रथम दीवान लेखक यही है। इसकी गजलों को क्रम से लगाकर एक हस्तलिखित ग्रंथ तैयार किया है, जिसकी भूमिका से यह मालूम होता है कि मुहम्मद कुली ने ५०,००० शेर लिखे थे। इस ग्रंथ में मसनवी, कसीदे, तरजीहबंद, फारसी मर्सिये, दक्षिणी मर्सिए, फारसी गजलें, और रुबाइयाँ इसी क्रम से संगृहीत हैं। किसी भाषा के आरंभिक काल के कवि के समान इनकी कविता भी अच्छी ही मानी जायगी। इनकी भाषा में दक्षिणी शब्द भी बहुत आए हैं। इनके शेरों में मदिरा और मस्ती का बराबर जिक्र रहा है, जिससे फारसी की रंगत साफ झलकती है।

इस कवि ने केवल प्रेम पर ही नहीं लिखा है, वरन् अन्य

विषयों पर भी कविता की है, जिनमें मानवी विचार और प्राकृतिक वर्णन भी सम्मिलित हैं। भाव, विचार, उपमा आदि फारसी की हैं और छंद भी उसी के साँचे में ढाले हुए हैं। पर इन सबके होते हुए भी, आशिक-माशूक के संबंध में इन्होंने फारसी कवियों की परिपाटी नहीं अपनाई है। हिंदी उपमाएँ, कथानक आदि भी बराबर लिए गये हैं, उनका बहिष्कार नहीं किया है।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

रख एक है पर एक कधन लाख चमन है।
लख जाते है हर ठार वले एक रतन है॥
किस ठार में दिसता नहीं हर ठाठ है भर पूर॥
देखन को सकत का उसे बस एक नयन है॥
मुँज इश्क गिरी आग का एक चिनगी है सूरज।
इस आग के शोले का धुआँ सात गगन है॥

× × ×

प्रिया बाज प्याला पिया जाये न।
पिया बाज एक तिल जिया जाये ना॥
नहीं इश्क जिसको बड़ा कोर है।
कधीं उससे मिल बैसिया जाये ना।
कुतुब शह न दे मुझे दिवाने को मंद।
दिवाने को कुछ मंद दिया जाए न॥

है इश्क हर एक धात हर एक दिल में पियारा ।
मुँज इश्क पियारे का अहै जिउ का सहारा ॥
बिन सैर तुम न सारी कलियाँ सूख रहीं हैं ।
टुक आके करो गश्त चमन जी उठे सारा ॥

आरजू

इनका पूरा नाम 'सिराजुद्दीन अली खाँ 'आरजू' था। यह फारसी के प्रसिद्ध विद्वान तथा कवि थे। 'खाने आरजू' के नाम से भी ये मशहूर हैं। 'आरजू' उस समय के कवि हैं, जब कि फारसी कविता पर सूफियाना रंग अच्छी तरह से चढ़ा हुआ था। सूफी साधुओं का उस समय दौरदौरा था। पीरोमुर्शिद की चारों ओर धूम थी। इसलिये उर्दू ने भी उसकी नकल की। पर यह नकल शीघ्र ही अश्लीलतापूर्ण हो गई। इस काल के अच्छे-अच्छे कवियों की रचना में इस प्रकार की अश्लील तथा निम्न कोटि की कविता मिलती है। 'आरजू' की विशेषताओं की प्रशंसा मीर हसन तथा 'लुत्फ' आदि ने की है।

उर्दू साहित्य में 'आरजू' का स्थान और महत्व केवल इनकी कविता के कारण ही नहीं है, वरन् इनकी काव्य-मर्मज्ञता तथा उर्दू के प्रसिद्ध कवियों के गुरू होने के कारण है। 'आरजू' ने शायर 'हज़ीं' के दीवान में अशुद्धियाँ निकालकर एक पुस्तक ही लिख डाली। 'दादे सखुन' नामकी एक पुस्तक भी इसी प्रकार

लिखी है, जिसमें शैदा, मुनीर आदि शायरों की आलोचना की गई है। इनके फारसी के दीवान में ३०,००० शेर हैं। इन्होंने सिकंदर नामा, 'उर्फी' के कसीदों और सादी के गुलिस्ताँ पर टीकायें की हैं।

वली मुहम्मद 'वली'

इन्हें उर्दू कविता का 'बाबा आदम' कहा जाता है। यों उर्दू कविता के विकास की दृष्टि से देखा जाये, तो यह बात उचित नहीं जान पड़ती। फिर भी 'वली' ने जो काम किये हैं, वे महत्वपूर्ण हैं, और इसीलिये उन्हें यह सम्मान दिया जाता है।

प्रसिद्ध विद्वान 'गार्सा द तासी' ने 'वली' की कविताओं का संग्रह भूमिका सहित प्रकाशित किया था। इन्होंने मुख्यतयः गजल, मसनवी तथा कसीदे लिखे हैं। 'वली' की कविताओं का विषय प्रायः प्रेम-भावनाओं का चित्रण ही है, भाषा की दृष्टि से इनकी कविता का काफी महत्व है।

'वली' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

जिसे इश्क का तीर कारी लगे।
उसे जिंदगी क्यों न भारी लगे॥
न होवे उसे जग में हरगिज करार।
जिसे इश्क की बेकरारी लगे॥
वली को कहे तू अगर एक बचन।
रकीबों के दिल में कटारी लगे॥

है इश्क हर एक धात हर एक दिल में पियारा।
मुँज इश्क पियारे का अहै जिउ का सहारा॥
बिन सैर तुम न सारी कलियाँ सूख रहीं हैं।
टुक आके करो गश्त चमन जी उठे सारा॥

आरजू

इनका पूरा नाम 'सिराजुद्दीन अली खाँ 'आरजू' था। यह फारसी के प्रसिद्ध विद्वान तथा कवि थे। 'खाने आरजू' के नाम से भी ये मशहूर हैं। 'आरजू' उस समय के कवि हैं, जब कि फारसी कविता पर सूफियाना रंग अच्छी तरह से चढ़ा हुआ था। सूफी साधुओं का उस समय दौरदौरा था। पीरोमुर्शिद की चारों ओर धूम थी। इसलिये उर्दू ने भी उसकी नकल की। पर यह नकल शीघ्र ही अश्लीलतापूर्ण हो गई। इस काल के अच्छे-अच्छे कवियों की रचना में इस प्रकार की अश्लील तथा निम्न कोटि की कविता मिलती है। 'आरजू' की विशेषताओं की प्रशंसा मीर हसन तथा 'लुत्फ' आदि ने की है।

उर्दू साहित्य में 'आरजू' का स्थान और महत्व केवल इनकी कविता के कारण ही नहीं है, वरन् इनकी काव्य-मर्मज्ञता तथा उर्दू के प्रसिद्ध कवियों के गुरू होने के कारण है। 'आरजू' ने शायर 'हर्जी' के दीवान में अशुद्धियाँ निकालकर एक पुस्तक ही लिख डाली। 'दादे सखुन' नामकी एक पुस्तक भी इसी प्रकार

लिखी है, जिसमें शैदा, मुनीर आदि शायरों की आलोचना की गई है। इनके फारसी के दीवान में ३०,००० शेर हैं। इन्होंने सिकंदर नामा, 'उर्फी' के कसीदों और सादी के गुलिस्ताँ पर टीकायें की हैं।

वली मुहम्मद 'वली'

इन्हें उर्दू कविता का 'बाबा आदम' कहा जाता है। यों उर्दू कविता के विकास की दृष्टि से देखा जाये, तो यह बात उचित नहीं जान पड़ती। फिर भी 'वली' ने जो काम किये हैं, वे महत्वपूर्ण हैं, और इसीलिये उन्हें यह सम्मान दिया जाता है।

प्रसिद्ध विद्वान 'गार्सा द तासी' ने 'वली' की कविताओं का संग्रह भूमिका सहित प्रकाशित किया था। इन्होंने मुख्यतयः गजल, मसनवी तथा कसीदे लिखे हैं। 'वली' की कविताओं का विषय प्रायः प्रेम-भावनाओं का चित्रण ही है, भाषा की दृष्टि से इनकी कविता का काफी महत्व है।

'वली' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

जिसे इश्क का तीर कारी लगे।
उसे जिंदगी क्यों न भारी लगे॥
न होवे उसे जग में हरगिज करार।
जिसे इश्क की बेकरारी लगे॥
वली को कहे तू अगर एक बचन।
रकीबों के दिल में कटारी लगे॥

सजन तुम मुख सेती खोलो नकाब आहिस्ता-आहिस्ता।
कि ज्यों गुल से निकलता है गुलाब आहिस्ता-आहिस्ता।
हजारों लाख खूबाँ में सजन मेरा चले यूँ कर।
सितारों में चले ज्यों माहताब आहिस्ता-आहिस्ता॥
सलोने साँवरे पीतम तेरे मोती की झलकों ने।
किया अकदे सुरैया को खराब आहिस्ता-आहिस्ता॥

काजी महमूद 'बहरी'

यह एक सूफी कवि थे। इनकी एक मसनवी प्रकाशित हो चुकी है, जिसका नाम 'मनलगन' है। अभी कुछ दिन पहले इनकी लिखी हुई कुछ गजलों का भी एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। उनकी एक गजल उदाहरण-स्वरूप नीचे दी जा रही है—

सूर तुझ मुख मिसाल नैं सच है।
लाल तुझ लब से लाल नैं सच है॥
धन तेरे मदमाते नयन के निमन।
पुर्तगाली कलाल नैं सच है॥
अब खुशामद तू बस कर ऐ बहरी
तुझ पर उसका ख्याल नैं सच है॥

'सिराज' औरंगाबादी

यह औरंगाबाद में पैदा हुए थे और वहीं निवास करते

थे । उर्दू के सूफी कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी मसनवी 'बोस्ताने-ख्याल' काफी मशहूर है जिसमें ११६० शेर हैं। कहा जाता है कि 'बोस्ताने ख्याल' की रचना कवि ने दो ही दिन में कर ली थी।

'सिराज' औरंगाबादी के कुछ शेर यहाँ उदाहरण के लिए दिए जाते हैं—

सब जगत ढूँढ़ फिर प्यु को न पाया हरगिज ।
दिल के गोशे में मकाँ था मुझे मालूम न था ॥

× × ×

मुद्दत से गुम हुआ दिले-बेगाना ऐ सिराज ।
शायद कि जा लगा है किसी आशना के हाथ ॥

× × ×

शाह मुबारक 'आबरू'

इनका नाम नजमुद्दीन था। यह 'आरजू' के शिष्य थे। इन्होंने एक मसनवी भी लिखी है। वैसे इनकी कुछ फुटकर कविताएँ ही मिलती हैं।

इनके कुछ शेर उदाहरण के लिए नीचे दिए जाते हैं—

कौल आबरू का था कि न जाऊँगा उस गली ।
होकर के बेकरार देखा आज फिर गया ॥

× × ×

फिरते थे दश्त दश्त दिवाने किधर गए।
वे आशिकी के हाय जमाने किधर गए॥

× × ×

अफसोस है कि मुझको वह यार भूल जावे।
वह शौक वह मुहब्बत वह प्यार भूल जावे॥

'हातिम'

यह एक बड़े कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इनका जन्म सन् १६९९ में हुआ था। इनका पूरा नाम शेख जहुरुद्दीन 'हातिम' था। इनकी कविता के कई संग्रह हैं, जिनमें से 'दीवान जादा' बहुत प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध कवि 'सौदा' इन्हीं के शिष्य थे।

'हातिम' की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

जिंदगी दर्द सर हुई हातिम।
कब मिलेगा मुझे प्रिया मेरा॥

× × ×

जिसको देखा सो यहाँ दुश्मने जाँ है अपना।
दिल को जाने थे हम अपना, सो कहाँ है अपना॥

× ×

'फाइज'

इनका पूरा नाम सदरुद्दीन मुहम्मद 'फाइज' था। यह

फारसी के प्रसिद्ध विद्वान थे, इनके संबंध में खोज द्वारा बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं। इन्होंने फारसी में भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

है इंदर की मानों सभा जल्वागर।
कि हर नार दिस्ती है रंभा सों वर॥
कमर पर जो पड़ते हैं सब मूए सर।
उना बीच मिल जाता मूए कमर॥

लजाती है ज्यों अप्सरा जी को छल।
कि देख उनको पानी में दिल जाए जल॥

हर एक नार सूरज सी शोभा धरे।
खड़ी हो सूरज की तपस्या करे॥

सौदा

इनका पूरा नाम मिर्जा मुहम्मद रफीअ 'सौदा' था। यह उर्दू के उस समय के कवि थे, जब कि उर्दू - साहित्य काफी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। उर्दू-साहित्य-वाटिका के एक कोने में बीजों का जो जखीरा तैयार कर रखा गया था, उसे लेकर 'सौदा' जैसे कवियों ने क्यारियाँ बनाकर उस बाटिका को सजा दिया। 'सौदा' ने पद्य और गद्य दोनों लिखे हैं और काफी मात्रा में लिखा है। इनकी रचनाओं में एक फारसी

का दीवान है, जो छोटा होते हुए भी पूरा है। 'दीवान रेख्ता' इनकी कविता का बड़ा खजाना है, जिसमें गजल, रूबाई, मुस्ताज आदि सभी कुछ है। इनके उर्दू के कसीदे बड़ी धूम-धाम के हैं और यह उर्दू के प्रथम कवि हैं, जिन्होंने कसीदों को लिखा है, और ऐसा लिखा है कि प्रसिद्ध कवि भी इनकी समता कठिनता से कर पाते हैं।

रेख्ता की बोली में से हिंदी के खटकने वाले शब्दों को निकालकर फारसी शब्दों का प्रयोग कर उर्दू भाषा को परिमार्जित करने में सौदा' तथा 'मीर' ने बहुत प्रयत्न किया है। फारसी भाषा के मुहावरों आदि के प्रयोग के साथ-साथ हिंदी शब्दों, विचारों और कथानक का भी समावेश हुआ है। उर्दू कविता के क्षेत्र में कसीदे इन्होंने ही आरंभ किए और ऐसे लिखे कि साहित्य-मर्मज्ञ इन्हें कसीदे का बादशाह कहने लगे। इन्होंने हजो अर्थात् निंदात्मक कविता भी खूब लिखी।

'सौदा' का प्रभाव उनके परवर्ती कवियों पर काफी पड़ा है। 'मीर' जैसे कर्मठ समालोचक भी इन्हें पूरा कवि मानते थे। इनके भावों की उड़ान ऊंची थी। इनकी भाषा भावों के अनुकूल है तथा उसमें शैथिल्य का दोष नहीं आने पाया है।

'हसन'

इनका पूरा नाम मीर गुलाम 'हसन' था। इनकी मस-

नवियाँ व गजलें बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी एक मसनवी 'सेहरुल बयान' तो अमर रचना है। इसके अतिरिक्त इनकी 'गुलजारे-एरम' नामक एक अन्य मसनवी भी काफी प्रसिद्ध है।

'हसन' की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

दिल गम से तेरे लगा गए हम।
किस आग से घर जला गए हम॥
खोया गया उसमें गो दिल अपना।
पर यार तुझे तो पा गए हम॥

× × ×

तू रहा दिल में दिल रहा तुझमें।
तिस प तेरा मिलाप न हो सका॥
हँसना और बोलना तो एक तरफ।
सामने उसके मैं तो रो न सका॥

'जुरअत'

इनका पूरा नाम शेख कलंदर बख्श 'जुरअत' था। यह कविवर 'हसरत' के शिष्य थे। 'जुरअत' बिल्कुल अंधे थे। इसी कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा उचित रूप से न हो सकी थी। इन्होंने प्रायः गजलें ही लिखी हैं जो मुख्यतः श्रृंगार-वर्णन संबंधी हैं।

'जुरअत' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

बात ही औव्वल तो वह करता नहीं मुझसे कभी।
और जो बोले भी है कुछ मुँह से तो शरमाया हुआ॥
है कलक से दिल की यह हालत मेरी अब तो कि मैं।
चार सू फिरता हूँ अपने घर में घबराया हुआ॥

× × ×

आए जो मेरे पास तो मुँह फेर कर बैठे।
यह आज नया आपने दस्तूर निकाला॥

'मीर'

कवि 'मीर' इतने प्रसिद्ध हो गए थे कि लोग इनकी इनकी गजलें दूर-दूर तक भेंट के तौर पर ले जाया करते थे। 'मीर' की प्रकृति में अहम्मन्यता की मात्रा अधिक थी। इन्होंने रेख्ता के छै दीवान लिखे हैं, जिनमें केवल गजलें ही नहीं हैं, वरन् रूबाई, मुस्तजाद, मुखम्मस, मुसद्दस आदि अनेक प्रकार की कविताएँ है। इन दीवानों में हजारों गजलें हैं। 'मीर' ने बहुत-सी मसनवियाँ और कसीदे भी लिखे हैं। मसनवियों में निंदा, प्रेम तथा प्रशंसा वर्जित है। अजगरनामा में स्वयं अजगर बने हैं तथा अन्य कवियों को छोटा-छोटा साँप बनाया है, जो अजगर की एक ही फुफकार में नष्ट हो गए। बिल्ली, बकरी, कुत्ते आदि पर भी मसनवियाँ लिखी हैं।

यद्यपि इन्होंने सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है,

लेकिन इन्हें विशेष सफलता गजल में ही मिली है। गजल में ही इनकी प्रतिभा पूर्ण रूप से जागृत हुई है। उसमें ओज और प्रसाद गुण के साथ ही करुण रस का उत्तम परिपाक हुआ है। कुछ शेर तो इतने अच्छे बने हैं कि सूक्तियों की तरह चल निकले हैं। भाषा की सफाई, मुहावरों का सुन्दर प्रयोग और भरती के शब्दों का लाना भी दर्शनीय है।

शैली अत्यंत सादी होते हुए भी आलंकारिक होती थी। छोटी-छोटी बहर में काव्यामृत भर देते थे। इसीलिए इन्हें उर्दू का शेख शादी कहा जाता है।

उर्दू-साहित्य में 'मीर' और मिर्जा का वही स्थान है, जो हिंदी में सूर और तुलसी का है। गालिब, नासिख आदि अनेक बड़े कवियों ने मीर की प्रशंसा के पुल बाँधे हैं। मीर की जीवनी से ज्ञात होता है कि वे अपने हाल से कभी संतुष्ट न रहते थे। किसी का भी व्यवहार इन्हें प्रसन्न न कर सका और उनके अनुभव सदैव कटु रहे। इस कारण जितना ही करुणोत्पादक भाव वह कविता में व्यक्त करना चाहते थे, उतना ही अधिक सफल होते थे। दुखी हृदयों को उनके एक-एक शेर में उनके निज-हृदय की करुण कथा प्रवाहित होती थी।

'मीर' के चित्र स्याही मायल नीम रंग के हैं, पर बहुत ही मार्मिक हैं। भाव और विचार ऐसे चुने हुए शब्दों में रखे गये हैं कि उनके शब्दों का हेर-फेर अधिक या कम करना संभव नहीं।

'मीर' की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

कहते तो हो यूँ कहते, यूँ कहते जो वोह आता।
सब कहने की बातें हैं, कुछ भी न कहा जाता॥

× × ×

तड़पै है जब कि सीने में उपले हैं दो-दो हाथ।
गर दिल यही है 'मीर' तो आराम हो चुका॥

× × ×

इक निगाह करके उसने मोल लिया।
बिक गये आह, हम भी क्या सस्ते॥

× × ×

मैं रोऊँ तुम हँसो हो, क्या जानो 'मीर' साहब।
दिल आपका किसू से शायद लगा नहीं है॥

× × ×

आने में उसके हाल हुआ जाये है तगईर।
क्या हाल होगा पास से जब यार जायगा॥

सख्त काफिर था जिसने पहले 'मीर'।
मजहबे इश्क अख्तियार किया॥

× × ×

न गया 'मीर' अपनी किश्ती से।
एक भी तख्ता पार साहिल तक॥

आग थे इब्तदाएइश्क में हम।
हो गए खाक इंतहा है यह॥
'मीर' बंदों से काम कब निकला।
माँगना है जो कुछ खुदा से माँग॥

× × ×

सुबह तक शमअ सर को धुनती रही।
क्या पतंग ने इल्तमास किया॥

× × ×

शर्त सलीका है हर इक उम्र में।
ऐब भी करने को हुनर चाहिए॥

ज़ौक

'ज़ौक' ने 'शौक' के यहाँ शिक्षा प्राप्त की। अपने ही गुरु के उपनाम के वजन पर इन्होंने अपना उपनाम रखा। यह गजल तथा कसीदा लिखने में उस्ताद थे। नबाब हामिदअली खाँ के कहने पर उन्होंने 'नामये जहासोज्ज' नाम की मसनवी लिखी, जो अपूर्व थी और बलवे में नष्ट हो गई। इन्होंने किता तथा तारीखें आदि भी लिखी हैं। प्रो० आजाद ने इनकी प्राप्त कविताओं का जो संग्रह प्रकाशित कराया है, वह इन जैसे आशुकवि की पचास वर्ष की रचना के लिये बहुत कम है। परंतु इनका काफी समय बादशाह जफर की कविता ठीक करने में लग जाता था।

जौक ने अपनी कविता में भाषा को अधिक महत्व दिया है। इन्होंने रूपक, उपमा आदि अलंकारों की भरमार करके भाषा को बोझिल नहीं बनाया। इनकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थीं और इन्हें हजारों शेर याद रहते थे। पर इतिहास, सूफी कर्म आदि के ग्रंथों का अध्ययन भी करते थे। कविता में यह भाषा को इतना महत्व देते ये, कि भाव-गांभीर्य तथा कल्पना शक्ति को उसके आगे गौण ही बना रहना पड़ता था। यही कारण है कि कसीदा लिखने में यह सबसे आगे बढ़ गये हैं।

गजल में इन्होंने सौदा, जुरअत आदि कई कवियों की शैलियों को सफलतापूर्वक निबाहा है, जिससे इनका संग्रह रंग-बिरंगे फूलों का गुच्छा कहलाता है।

इनकी तुलना केवल ग़ालिब से की जा सकती है। भाषा-सौष्ठव, माधुर्य तथा ओजपूर्ण कसीदों में 'जौक' काफी आगे हैं। काव्य-कला के पूर्ण ज्ञाता होने से इनकी भाषा में शिथिलता नहीं आने पाई है इन्हीं गुणों के कारण 'जौक' उर्दू-साहित्य के समुज्ज्वल रत्न के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

'जौक' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

मौत ने कर दिया नाचार वगर्ना इंसाँ।
है वह खुदबीं कि खुदा का भी न कायल होना ॥
क्या जाने उसे वहम है क्या मेरी तरफ से।
जो ख्वाब में भी रात को तनहा नहीं आता ॥

आने से मेरे ठहर गये आप वगर्ना।
जाने का इरादा तो कहीं हो ही चुका था॥

× × ×

जाहिद शराब पीने से काफिर हुआ मैं क्यों।
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया॥

× × ×

किस्मत से ही लचार हूँ ऐ 'जौक' वगर्ना।
हर फन में हूँ मैं ताक मुझे क्या नहीं आता॥

× × ×

आदमीयत और शै है, इल्म है कुछ और चीज।
कितना तोते को पढ़ाया पर वोह हैवां ही रहा॥

× × ×

कहा पतंगे ने यह दारेशमअ पर चढ़कर।
अजब मजा है जो मर ले किसी के सर चढ़कर॥

× × ×

किसी बेकस को ऐ वोदादगर मारा तो क्या मारा।
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा॥
बड़े मूजी को मारा नफ़्से अम्मारा को गर मारा।
निहंगों अजदहा ओ शेर नर मारा तो क्या मारा॥

न मारा आपको जो खाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीरगर मारा तो क्या मारा॥
तुफंगों तीर तो जाहिर न था कुछ पास कातिल के।
इलाही फिर जो दिल पर ताक कर मारा तो क्या मारा॥

× × ×

लाई हयात आये कजा ले चली चले।
अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले॥

'गालिब'

उर्दू के सर्वोत्तम कवियों में अग्रगण्य महाकवि 'गालिब' को संसार के सुख-दुख का काफी अनुभव हुआ था। यह विनोदप्रिय और प्रसन्न चित्त व्यक्ति थे। यही कारण है कि इनके दुखानुभावों में आशा की झलक दिखायी देती है। इनके विनोदपूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर की कहानियाँ अब तक प्रचलित हैं। फारसी पर इनका इतना ममत्व था कि इन्होंने उसी में कविता की, जो समय के प्रवाह में पड़कर, मित्रों के अनुरोध से लिखी गई थी। पर आज 'गालिब' की प्रसिद्धि उसी की आश्रित है। यह प्रतिभाशाली विद्वान तथा प्रिय कवि थे और यही इनकी अमर प्रसिद्धि का कारण है।

इनके पत्र संग्रह 'ऊदए हिंदी' और 'ऊदए मुअल्ला' इनके गद्य के अच्छे नमूने हैं। 'सैफुल हक' उपनाम से लिखा गया 'लतायफे गैबी' संग्रह मात्र है। 'बुहाने कात' नामक प्रसिद्ध

कोश की कुछ अशुद्धियों को इन्होंने 'कातरा बुर्हान' नामक पुस्तक में दिखाया है। 'पंच आइंग' फारसी का गद्य-ग्रंथ है। 'मेह्र नीय रोज' नामक एक इतिहास भी इन्होंने लिखा है, जिसमें अमीर तैमूर से हुमायूँ तक का वृत्तांत है। दूसरे भाग 'माह नीम' में अकबर से लेकर बहादुरशाह तक का इतिहास इन्होंने लिखना चाहा था, जो पूरा न हो सका।

अपनी पद्य तथा गद्य-कृतियों के कारण फारसी-साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। यह खुसरो, फैजी आदि प्रसिद्ध भारतीय कवियों के समकक्ष माने जाते हैं। उर्दू-साहित्य में भी इनका स्थान बहुत ऊँचा है। यह उर्दू के सूर या तुलसी माने जाते हैं।

इनका भाषा पर काफी अधिकार था और यह थोड़े शब्दों में इतना भाव भर देते थे कि पढ़ने वाला मुग्ध हो जाता था। इनके पद्य में सरल प्रवाह, मौलिकता, तथा सुकुमारता आदि गुण रहते थे। यह कविता में अपना हृदय खोलकर रख देते थे। भावावेश में इन्होंने स्वर्ग-नर्क, पुण्य, मृत्यु आदि के रहस्य पर छोटे-छोटे शेरों में काफी महत्वपूर्ण बातें कह दी हैं।

'गालिब' की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

बकद्रे शोक नहीं जर्फे तंग नाये गजल।
कुछ और चाहिए वुस्अत मेरे बयाँ के लिए॥

× × ×

गमेहस्ती का 'असद' किससे हो जुजमर्ग इलाज।
शमअ हर रंग में जलती है सहर होने तक ॥

× × ×

जिंदगी अपनी जब इस शक्ल से गुजरी यारब।
हम भी क्या याद रखेंगे कि खुदा रखते थे ॥

× × ×

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हम-सखुन कोई न हो और हम-जुबाँ कोई न हो।
बेदरोदीवार सा इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो ॥
पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए तो नौहाख्वाँ कोई न हो ॥

× × ×

मय से गरज निशात है किस रूसियाह को।
एक गूनाबे खुदी मुझे दिन-रात चाहिए ॥

× × ×

इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के ॥

× × ×

अब तो घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के भी चैन न पाया तो कहाँ जाएँगे ॥

था जिंदगी में मौत का खटका लगा हुआ ।
उड़ने से पेश्तर भी मेरा रंग जर्द था ॥

× × ×

किससे महरूमिए किस्मत की शिकायत कीजे ।
हमने चाहा था कि मर जाएँ सो वह भी न हुआ ॥

× × ×

खामोशी में निहाँ ख़ूँ गुश्ता लाखों आरजूएँ हैं ।
चिरागे मुर्दा हूँ मैं बेजबाँ गोरे गरीब का ॥

× × ×

कहूँ किससे मैं कि क्या है, शबेगम बुरी बला है ।
मुझे क्या बुरा था मरना, अगर एक बार होता ॥
हुये हम जो मर के रुसवा हुए क्यों न गर्के दरिया ।
न कभी जनाजा उठता, न कहीं मजार होता ॥

× × ×

शमअ बुझती है तो उसमें से धुआँ उठता है ।
शोलये इश्क सियहपोश हुआ मेरे बाद ।

× × ×

राजे माशूक न रुसवा हो जाये ।
वरना मर जाने में कुछ भेद नहीं ॥

× × ×

कहते हैं जीते हैं उम्मीद पै लोग।
हमको जीने की भी उम्मीद नहीं॥

× × ×

छोड़ा न रश्क ने कि तेरे घर का नाम लूँ।
हर इक से पूछता हूँ कि जाऊँ किधर को मैं॥

× × ×

मैंने कहा कि 'बज्मे नाज चाहिये गैर से तिहीं।
सुनकर सितम जरीफ ने मुझको उठा दिया कि यूँ॥
आशिक हुए हैं आप भी इक और शख्स पर।
आखिर सितम की कुछ तो मकाफात चाहिये॥

× × ×

अपनी गली में मुझको न कर दफन बादे कत्ल।
मेरे पते से खल्क को क्यों घर तेरा मिले॥

नवाब मिर्जा 'दाग'

छुटपन से ही 'दाग' को कविता लिखने का बड़ा शौक था। दिल्ली के किले में रहकर इन्होंने अच्छी शिक्षा प्राप्त की। सुलिपि लिखना, घुड़सवारी, तथा युद्धविद्या भी सीखी और मौलवी गियासुद्दीन से, जो प्रसिद्ध कोश 'गियासुल्लुगात् के रचयिता कहे जाते हैं, फारसी पढ़ी। 'दाग' ने 'नसीर' की मृत्यु के बाद हैदराबाद की मुरझाती काव्यलता को फिर से प्रफुल्लित कर दिया था।

'दाग' बड़े शीलवान्, विनम्र, विनोदप्रिय तथा स्पष्टवादी पुरुष थे। आत्माभिमानी होते हुए भी घमंडी न थे। इन्होंने कभी अपने प्रतिद्वंद्वियों से द्वेष या वैमनस्य नहीं रखा, बल्कि सदैव उनसे प्रेम-पूर्ण व्यवहार ही करते रहे। इन्होंने किसी की हजो (निंदा) नहीं कही और सदा अपनी उन्नति के मार्ग को ही प्रशस्त करने में लगे रहे।

'गुलजारे दाग,' 'आफताबे दाग', 'महताबे दाग,' तथा 'पादमारे दाग, नामक इनके चार दीवान हैं, जो प्रेम से पगे हुए हैं। प्रेमोपासक होने के कारण इनके कसीदे ओजपूर्ण नहीं हो सके। इनकी रुबाइयाँ भी इसी प्रकार की हैं। विद्रोह से दिल्ली के नष्ट होने पर इन्होंने जो कविताएँ लिखीं, वह करुणापूर्ण हैं। इनकी शैली की सफलता का प्रमाण उसकी लोकप्रियता है। इनकी शैली का मर्म यही है, कि उसमें विद्वत्ता दिखाने को क्लिष्ट वाक्य योजना, फारसी-अरबी के कठिन शब्दों के प्रयोग तथा वागाडंबर में अर्थ छिपाने का प्रयत्न नहीं है, वरन् यथाशक्ति सरलता तथा सुगमता लाने का ही प्रयास है।

प्रसाद गुण से इनकी कविता ओत-प्रोत है और भाषा की स्वच्छता के लिए यह विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता में भरती के शब्द नहीं हैं और न छंदों की ही कमी है। अलंकार कविता के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हुये हैं, उनके लिए कविता नहीं की गई है। प्रवाह ऐसा स्वच्छ है कि पढ़ते ही बनता है। विरहियों

के कष्टमय उद्‌गार, प्रेम तथा शृंगारादि वर्णन, तथा उत्तर-प्रत्युत्तर आदि हृदयग्राही और चित्ताकर्षक हैं।

'दाग' का स्थान उर्दू-साहित्य में बहुत ऊँचा है। भाषा-सौष्ठव तथा लोकप्रिय रचना के कारण यह अमर कवि हुये हैं। यह अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कवि 'अमीर मीनाई' के प्रतिद्वंद्वी रहे।

इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

रूखे रोशन के आगे शमअ रखकर वोह यह कहते हैं।
'उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है।'

\+ + +

हूबहू खींचेगा लेकिन इश्क की तस्वीर कौन।
उठ गया नाविक फिगन, मारेगा दिल पर तीर कौन॥

\+ + +

मंजिले मकसूद तक पहुँचे बड़ी मुश्किल से हम।
जोफ ने अक्सर बिठाया, शौक अक्सर ले चला॥

\+ + +

गश खा के 'दाग' यार के कदमों पै गिर पड़ा।
बेहोश ने भी काम किया होशियार का॥

\+ + +

वही हम थे कि जो रोतों को हँसा देते थे।
अब वही हम हैं कि थमता नहीं आँसू अपना॥

कल छुड़ा लेंगे पै जाहिद ! आज तो साकी के हाथ।
रहन इक चुल्लू पै हमने हौजे कौसर रख दिया॥

\+ + +

यह मजा था दिल्लगी का कि बराबर आग लगती।
न तुझे करार होता न मुझे करार होता॥

\+ + +

आँखें बिछाए हम तो उदू की भी राह में।
पर क्या करें कि तुम हो हमारी निगाह में॥

\+ + +

खुदा की कसम उसने खाई है आज।
कसम है खुदा की मजा आ गया॥

\+ + +

खूब परदा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं।
साफ छिपते भी नहीं सामने आते भी नहीं॥

\+ + +

खातिर से या लिहाज से मैं मान तो गया।
झूठी कसम से आपका ईमान तो गया।

\+ + +

जिसमें लाखों बरस की हूरें हों।
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई॥

जिंदगी में पास से दम भर न होते थे जुदा।
कब्र में तनहा मुझे यारों ने क्योंकर रख दिया॥

\+ + +

खुशी से कहते हैं यह भी मेरा ही आशिक था।
वोह देखते हैं नई जिस मजार की सूरता॥

\+ + +

जो तुम्हारी तरह तुमसे कोई झूठे वादे करता।
तुम्हीं मुंसिफी से कह दो, तुम्हें एतबार होता॥

\+ + +

दिल का क्या हाल कहूँ सुबह को जब उस बुत ने।
लेके अँगड़ाई कहा नाज से 'हम जाते हैं॥'

\+ + +

खबर सुनकर मेरे मरने की वोह बोले रकीबों से।
'खुदा बख्शे बहुत सी खूबियाँ थीं मरने वाले में॥

\+ + +

गजब है देखना उस सादगी पर मर गये लाखों।
कहा था किसने बन बैठे हैं वोह मेरे सोगवारों में॥

\+ + +

कहीं दुनिया में नहीं इसका ठिकाना ऐ 'दाग'।
छोड़कर मुझको कहाँ जाए मुसीबत मेरी॥

'आजाद'

नवीन परंपरा में 'हाली' के सहयोगी मुहम्मद हुसेन 'आजाद, उर्दू-साहित्य के एक अमर कवि तथा गद्य-लेखक हो गए हैं। 'जौक' के एक मित्र के पुत्र होने के कारण इनकी भी रुचि कविता में हो गई। यह भी कवि-सभाओं में जाने तथा वहाँ कविता के गुण-दोष-विवेचन सुनने लगे। लाहौर में इन्होंने 'अंजुमने पंजाब' स्थापित किया, जिसका उद्देश्य उर्दू कविता को परिष्कृत करना था। इस संस्था के कई अधिवेशनों में 'आजाद' ने कविता के गुण-दोष पर व्याख्यान दिये थे।

पहले इन्होंने नवीन परंपरा के अनुसार प्राकृतिक-सौंदर्य वर्णन संबंधी कई मसनवियाँ लिखीं। 'शबेकद्र' में रात्रि के आगमन का विशद चित्र खींचा गया है। 'सुबहे उम्मीद' में प्रकृति के सुन्दर दृश्य के साथ मानव-कर्मठता का अच्छा वर्णन है। मसनवी 'अब्रे करम' में वर्षा ऋतु का विवरण है। मसनवी 'हुब्बे वतन' तथा मसनवी 'ख्वाहों-अमन' में देश-प्रेम विषयक अच्छी उक्तियाँ हैं।

आजाद की प्रसिद्धि पद्य से अधिक उनकी गद्य-रचनाओं के कारण है। इनका भाषा तथा भाव पर समान अधिकार था। सरल प्रवाह के प्रयोग, वर्णन शक्ति तथा कल्पना की उड़ान सभी एक से एक बढ़कर हैं। परंतु इनका वास्तविक क्षेत्र गद्य

ही था और उसी में इन्हें पूरी स्वतंत्रता के साथ अपने विचार, भाव तथा कल्पना के वातावरण में विचरण करने का अवसर मिला है। इस पर भी वह कविता के क्षेत्र में नवीन परंपरा की बुनियाद डालने वालों में माने जाते हैं।

'आजाद' सा उत्तम गद्य-लेखक अभी तक कोई नहीं हुआ। भारतीय भाषा उर्दू में विदेशी भाषा फारसी का पुट देना इन्हें अरुचिकर था। इसीसे इनके गद्य में क्लिष्टता नहीं आने पाई। घुमा-फिराकर तथा आलंकारिक भाषा लिखने पर भी प्रसाद-गुण की कमी न आने देना इन्हीं का गुण है। 'हाली' ने कविता को नया ढंग देने का इन्हें उन्नायक माना है। शिब्ली ने तो इन्हें 'उर्दू का खुदा' तक कहा है।

'हाली'

उर्दू-साहित्य का जब से नया दौर शुरू होता है वह समय उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। उस समय शायरों में दो किस्म के लोग थे। पहले किस्म में वे लोग थे, जो अतीत के पुजारी थे। उन्हें सब-कुछ पुराना ही पसंद आता था। पुराने जज़बे, पुराने इश्क, पुराने तशबीह, पुरानी इहाम, और पुरानी जबान में कहना ही उन्हें अच्छा लगता था।

दूसरी किस्म के शायर ठीक उनके विपरीत थे। ये नवीनता के फेर में पड़ कर प्राचीनता के घोर विरोधी हो गए थे। यह

नवीनता के इतने अंधभक्त बन गए थे कि प्राचीनता की अच्छी बातों का भी विरोध करते थे।

उपर्युक्त दो के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार के भी शायर थे, जो पुरानी परंपराओं का आदर करने के साथ ही नवीनता के प्रेमी और भविष्य के प्रति आशावादी थे। विचार और विवेक की कसौटी पर कसकर और शायरी के ढाँचे में ढाल कर वे ऐसी चीजें तैयार करते थे, जो अत्यंत सुन्दर और बेजोड़ होती थीं। इन्हीं शायरों को कौमी शायर कहा जाता है और इनमें 'हाली' तथा 'अकबर' का नाम आदर से लिया जाता है।

'हाली' दबिस्ताने-देहली (दिल्लीस्कूल) वर्ग के हैं। शायरी की इब्तदाई तालीम 'गालिब' से मिली थी और यही 'गालिब' के सबसे नामवर शिष्य हैं। शुरू में 'हाली' इश्कियाना शायरी करते थे, 'मगर अंजुमने पंजाब' में शरीक होने के बाद इनका रंग बदल गया। वहाँ सिर्फ गजलें ही नहीं, बल्कि विविध विषयों पर कविताएँ पढ़ी जाती थीं। उसी में उर्दू के मौजूदा नज्म की नींव डाली गई।

'हाली' ने भी मुशायरों या कवि-सभाओं में भाग लेना शुरू किया। उन्होंने इश्कियाना शायरी को बिदाई दी और प्राकृतिक तथा कौमी कविताएँ लिखने लगे। 'बरसा रितु',

'निशाते उम्मीद' तथा 'हुब्बे वतन' आदि नज़्में इन्हीं मुशायरों में पढ़ी गई थीं, जिनके कारण 'हाली' का नाम बहुत जल्दी मशहूर हो गया।

'हाली' की नीयत गजलगोई के खिलाफ थी। यह धार्मिक वृत्ति के आदमी थे और कौम की खिदमत करना अपना धर्म समझते थे। ऐसे व्यक्ति को हुस्ने-इश्क कब तक चकमा दे सकता है। 'हाली' की शायरी की शुरुआत का जमाना ऐसा था कि हर राह चलता शायर उस नौसिखुआपन के जमाने में अपना सही और स्वतंत्र रास्ता नहीं बना सकने के कारण नकली इश्क और मसनूई शराब वाली रचनाएँ करता था। लेकिन जब कौमी दर्द की हवा चली तब सब इश्कियाना रंग जाता रहा।

'हाली' कौम से सच्ची मुहब्बत करते थे। कौमी हमदर्दी उनकी नस-नस में भरी थी। उनके पहले के शायरों ने जबान की खिदमत जरूर की है और इसके लिए उर्दू जबान उनकी आभारी है। मगर इसके साथ ही उनसे कौम को कोई बड़ा लाभ पहुँचा हो—यह संदेह का विषय है। 'हाली' ही वह पहले शायर हैं जिन्होंने कौम की दर्दभरी कराह सुनी और सांप्रदायिक झगड़ों से दूर रहकर उनकी चिकित्सा भी की।

'हाली' के समय में हिंदुस्तान में अनेक बड़े-बड़े नवाब-बादशाह मिट चले, पर शायरों के कानों पर जूँ तक न रेंगी।

वे 'गमे जानाँ' के गीत अलापते ही रहे। 'हाली' ने सब-कुछ देखा-सुना और अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

अँग्रेजी - साहित्य का परिचय भी 'हाली' के साहित्यिक दृष्टिकोण को सँवारने-सुधारने में सहायक हुआ। अँग्रेजी कविता में सफाई और विचारों की उच्चता ने 'हाली' को बहुत प्रभावित किया। उर्दू-साहित्य में इन बातों की कमी उनको महसूस हुई। उनका जीवन एक सच्चे साहित्य-सेवी का था, जिसके सामने उन्होंने अन्य सभी प्रकार के प्रलोभनों को हेय समझा। उनके दिल में कौमी हमदर्दी काम करती थी, लेकिन सांप्रदायिकता की बदबू से उन्होंने अपने को बचाए रखा। उस समय की स्थिति भी ऐसी थी कि जातिगत भावनाएँ राष्ट्रीयता के खिलाफ नहीं समझी जाती थीं और राष्ट्रीयता की नकाब पहन कर सांप्रदायिकता की टट्टी की ओट में शिकार नहीं करती थी।

उस समय तक राजा राममोहन राय के आंदोलन से हिंदुओं में नवजागरण की ज्योति जग चुकी थी। मुसलमान उसकी लपेट से अपने को बचाते रहे। इसलिए 'हाली' ने देखा कि उन्हें बेदार करना ही उनका पहला फर्ज है। इस दिशा में सर सैयद अहमदखाँ ने भी उन्हें काफी प्रोत्साहन दिया। 'हाली' ने मुसलमानों को संबोधित करते हुए मुसद्दस लिखे। मुसद्दस की रचना करके ही वह कौम के प्रिय कवि बन गए।

उनका अनुकरण बहुतों ने किया, पर उनकी समता कोई न कर सका।

'हाली' का मुसद्दस उर्दू-विकास का इतिहास है और उर्दू-शायरी का सीमा-निर्देश करता है। 'दिल्ली की तबाही' आदि कविताओं में उन्होंने मुसलिम तरक्की व जबान का ऐसा चित्र खींचा कि वह उपदेशक और सुधारक के रूप में भी जल्दी ही मशहूर हो गए।

'हाली' केवल जातीय सुधारवादी ही नहीं थे, बल्कि साहित्यिक सुधारवादी भी थे। 'मुकद्दमा शेरोशायरी' के दो बाचा में उनका विचार स्पष्ट हो गया है। गजलों और अन्य प्रकार की रचनाओं में वह सुधार लाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने सबसे पहले गजल और कसीदे में नया रंग भर दिया। उन्होंने गजलों में प्रेम और नखशिख का ही वर्णन न करके उनमें प्राकृतिक एवं राजनीतिक विषयों का भी समावेश किया। गजल के रूप में सर्वप्रथम कौमी शायरी या जातीय कविता करनेवाले हाली ही हैं। अपने कसीदों में वह तारीफ ही नहीं, कर्तव्य-पालन और उत्तरदायित्व की भी याद दिलाते थे।

'हाली' स्पष्टभाषी थे। बाजारू शैली से उन्हें बहुत नफरत थी। अत्युक्ति या अनावश्यक अलंकारों से रचना को

बोझिल बनाने के बदले सीधे-सादे शब्दों की प्रभावशाल
शैली में नैतिक शिक्षा देना 'हाली' की ही प्रतिभा का चमत्क
था। इस दृष्टि से उनकी टक्कर का और कोई कवि नहीं हुआ।

'बरसा रितु' आदि की भाषा सरल, सहज और स्वाभावि
है। इस सीधी-सादी शैली के हाली उस्ताद समझे जा
हैं, पुराने कवियों के दृष्टिकोण से देखा जाए, तो 'हाल
की रचनाएँ भाषा और कल्पना की दृष्टि से बहुत उच्चको
की नहीं है। उनके शिष्य उनसे बढ़कर शायर हुए। लेकि
इसके साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 'हाली' ए
नई शैली के निर्माता हैं, जब कि फारसी लफजों और फारस
अलंकारों के बोझ से उर्दू शायरी की रीढ़ टूटी जा रही थी
'हाली' की रचनाओं से ही लोग यह समझने लगे कि मामूल
घिसे-घिसाए मजमूनों के अलावा कविता में और भी कुछ
सकता है।

'हाली' की कविता की विशेषता है—प्रकृति का अनुकरण
अत्युक्ति से नफरत, निहायत आसान और स्वाभाविक भाष
अलंकारों का कम से कम प्रयोग, पांडित्य प्रकट करने
प्रवृत्ति का अभाव, प्रभावोत्पादक शैली तथा भावों की स्पष्टत
'हाली' जिस तरह राष्ट्रीय और जातीय कवि हैं, उसी त
प्रकृति-गायक भी है। उर्दू शायरी, जो अनैतिकता के
से भरे अंधकूप में उस्तादों द्वारा ढकेल दी गई थी, उसे स्वर

सुंदर प्रकृति की गोद में प्रतिष्ठित करनेवाले 'हाली' ही हैं।

'हाली' की कविता में कुछ कमियाँ भी हैं। जैसे पिंगल के कायदों से कभी-कभी बाहर जाना, मुहावरों और अल्फाज की शुद्धता पर कम ध्यान देना, अनोखे अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल कर देना, जिससे रंग में भंग हो जाता था, आदि। अक्सर उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति भी कविता को नीरस बना देती थी। कुछ लोगों की यह भी शिकायत है कि हालाँकि उन्होंने नज्में और गजलें दोनों लिखी हैं, मगर उनकी शोहरत नज्मगोई में ही है, गजलगोई में नहीं। उन्होंने जो शायरी की, वह शायराना तखय्युल से नहीं, बल्कि कौमी खिदमतगार की हैसियत से की। गजलगोई को छोड़कर वह नज्मगोई में प्रवृत्त हो गए। इससे उर्दू शायरी को नुकसान ही हुआ। लेकिन, फिर भी, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि हालाँकि 'हाली' ने गजलें कम लिखीं, पर उनमें जो चमक है, और जो निखार है, वह उनकी नज्मों से बढ़कर है।

'हाली' की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

ऐ माओ, बहनो, बेटियो, दुनिया की जीनत तुमसे है।
मुल्कों की बस्ती हो तुम्हीं, कौमों की इज्जत तुमसे है॥
तुम घर की हो शहजादियाँ, शहरों की हो आबादियाँ।
गमगीं दिलों की शादियाँ, दुख सुख में राहत तुमसे है॥
नेकी की तुम तस्वीर हो इफ़्फत की तुम तदबीर हो।

हो दीन की तुम पासबाँ ईमाँ सलामत तुमसे है ॥
मर्दों में सतवाले थे जो, सत् अपना बैठे कब के खो।
दुनिया में ऐ सतवंतियों, ले दे के अब सत् तुमसे है ॥
मूनिस हो खाविंदों की तुम, गमख्वार फर्जंदों की तुम।
तुम बिन है घर वीरान सब, घर भर में बरकत तुमसे है ॥
तुम आस हो बीमार की, ढारस हो तुम बेकार की।
दौलत हो तुम नादार की, उसरत में इशरत तुमसे है ॥

× × ×

जागने वालो, गाफिलों को जगाओ।
तैरने वालों, डूबतों को तिराओ ॥
तुम अगर हाथ पाँव रखते हो।
लँगड़े लूलों को कुछ सहारा दो ॥

× × ×

नफासत भरी है तबीयत में उनकी।
नजाकत, सो दाखिल है आदत में उनकी ॥
दवाओं में मुश्क उनके उठता है ढेरों।
वोह कपड़ों में इत्र अपने मलते हैं सेरों ॥

× × ×

मुसीबत का इक-इक से अहवाल कहना।
मुसीबत से है यह मुसीबत जियादा ॥

कहीं दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न ।
जताओ न अपनी मुहब्बत जियादा ॥
जो चाहो फकीरी में इज्जत से रहना ।
न रक्खो अमीरों से मिल्लत जियादा ॥
फरिश्ते से बेहतर है इंसान बनना ।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत जियादा ॥

× × ×

अपनी नजर में भी याँ अब तो हकीर हैं हम ।
बेगैरता की यारो, अब जिंदगानियाँ हैं ॥
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा ।
कुछ कर लो नौजवानो, उठती जवानियाँ हैं ।

'अकबर'

महाकवि 'अकबर' अपने समय की बहुत बड़ी हस्ती थे । वह बेजोड़ शायर ही नहीं, अच्छे सूफी और नासिह भी थे । उनको नज्म और नस्र दोनों में हाली की तरह ही कमाल हासिल था । 'अकबर' ने शायरी की जिस नई शैली का प्रवर्त्तन किया, उस परंपरा को उनके बाद आगे ले चलने वाला कोई न रहा, क्योंकि उनकी नकल नामुमकिन थी । नौसिखुआ होने के कारण शुरू में उन्होंने भी 'हाली' की तरह बहुत सी गजलें दिल्ली - लखनऊ ढंग की लिखीं और मुशायरों में

सुनाईं। इनके विषय वही पुराने थे, मगर शृंगार रस की कविताओं में भी सफाई और सादगी उसी समय से मौजूद थी, जो 'हाली' की तरह आखीर तक बनी रही। नकली होने के कारण बनावट की बू होने पर भी वे गजलें एक प्रकार से उनके उज्ज्वल भविष्य की गारंटी थीं। लेकिन जैसा कि हाली ने किया, अपना रास्ता अलग चुन लेने में उनको देर नहीं लगी। अवध पंच ने भी उनको इस बात में मदद की।

अनुभव और अध्ययन के साथ ही इन पर से शुरू की शायरी के रूखेपन की केंचुली उतर गई और जराफत (हास्य) की चाशनी चढ़ती गई तथा तनज (व्यंग्य) की छुरी तेज होती गई, कविता में वर्तमान घटनाओं और पाश्चात्य सभ्यता की ओर कटु कटाक्ष; दार्शनिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक तत्वों की विवेचना आदि का रंग चढ़ जाने से तुरंत ही अकबर 'लस्सानुल अस्र' (समय की जिह्वा) के खिताब के हकदार बने। रूमानियत की कानाफूसी एक दम बंद होने पर भी सियासत के शोरोगुल में वह फीकी पड़ गई।

'अकबर' अपनी कला के इतने बड़े उस्ताद थे कि पिंगल संबंधी नियम उनकी नई-नई सूझों के सामने सिर झुकाते थे। भाषा भाव की खिदमत-सी करने लगी और खयालात जाहिर करने के नए-नए तरीके निकलते आए। नई-नई उपमाओं,

रूपक, श्लेष, अनुप्रास आदि से शायरी में इस कदर लचक व महक आई कि फिजा में वह अभी तक शेष है। सादगी, प्रवाह, उच्च विचार, उत्तम उदाहरण आदि 'अकबर' की कविता की विशेषताएँ हैं। करुणा, शोक और निराशा से उनकी कविता सरस होने पर भी विनोद और व्यंग के लिए अधिक मशहूर है। इस शैली के वह आचार्य हैं, इसमें कोई शक नहीं।

'अकबर' की कविताएँ इसलिए अचूक और असरदार बनीं कि अपनी निरीक्षण-शक्ति द्वारा जिन साधारण परिचित उपमाओं को आसपास से चुनकर वह अपनी कविता में प्रयुक्त करते थे, वे निराली और दिल में चुभ जाने वाली हैं। हिंदी, अँग्रेजी और उर्दू के सर्व प्रचलित शब्दों से वह इस कदर तुक मिलाते थे, कि शायर की 'रियायते लफ्ज़ी' (शब्दौ-चित्य) की दाद दिए बगैर नहीं रहा जा सकता। साधारण शब्दों को इस खूबी से संदर्भ पहचानकर उचित स्थान पर इस प्रकार रख देते थे कि गागर में सागर भर जाता। दूसरे शायर अशक्त समझकर जिन शब्दों को अदबी दुनिया से निकाल चुके थे, उन्हीं को लेकर 'अकबर' ऐसी बातें कहते थे कि लोग हँसते भी थे और सोचने के लिए मजबूर भी हो जाते थे।

'अकबर' ने उपदेश-संबंधी बहुत-सी कविताएँ की। उनकी रचनाएँ कवित्व और विनोद का मणि-कांचन-संयोग हैं।

उनकी कीमत सिर्फ मसखरेपन के कारण नहीं है, बल्कि वे गहरे अर्थ भी रखते हैं। हर पंक्ति में इखलाकी, तालीमी, सियासी, मजहबी, अदबी या रूहानी मतलबों का खजाना है।

'अकबर' हास्यरस को सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अति की इति के लिए अच्छे, असरदार हथियार के रूप में काम लाते थे। लेकिन इस विशेषता से युक्त होने पर भी उनकी रचनाएँ कटु नहीं हैं। व्यंग का लक्ष्य कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि समाज है। अँग्रेजों के अंधानुकरण पर आक्रमण करना उनका सबसे बड़ा लक्ष्य रहा। वे जानते थे कि अँग्रेजी नकल के कारण हिंदुस्तान के सामाजिक जीवन की बुनियाद हिल उठी है। वह देख रहे थे कि एक ऐसी महाजनी सभ्यता खड़ी हो रही है कि जिसको मनुष्यत्व की बलि दी जा रही है, एक ऐसा विदूषक-समाज पैदा हो गया है, जो हिंदुस्तान के सामाजिक जीवन को विषैला बनाता जा रहा था।

'अकबर' की हास्यरस कविताओं में कुछ हल्की हैं, जो केवल मनोरंजन के लिए लिखी गई हैं, लेकिन अधिकतर कविताएँ राजनीतिक क्षेत्र के रँगे सियारों पर लक्ष्य करके लिखी गई हैं। आक्रमण की कटुता कम करने और कलात्मक ढंग से अपनी बात कहने के लिए ही शुष्क विषयों को हास्य-युक्त बना देते थे।

'अकबर' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

दिल लिया है हमसे जिसने दिल्लगी के वास्ते।
क्या तअ़ाज्जुब है, जो तफ़रीहन हमारी जान ले॥

\+ + +

कासिद मिला जब उनसे, वे खेलते थे पोलो।
ख़त रख लिया यह कहकर, अच्छा सलाम बोलो॥

\+ + +

नेशनल बकअ़त के गुम होने का है 'अकबर' को गम।
आफ़िशल इज़्ज़त का उसको कुछ मजा मिलता नहं॥

\+ + +

बेपरदा नजर आईं, जो कल चंद बीबियाँ।
'अकबर' जमीं में गैरते कौमी से गड़ गया॥
पूछा जो उनसे 'आपका परदा कहाँ गया।'
कहने लगीं कि 'अक्ल पे मरदों की पड़ गया॥'

\+ + +

पुरानी रोशनी में औ नई में फ़र्क इतना है।
उसे किश्ती नहीं मिलती, इसे साहिल नहीं मिलता॥

\+ + +

शेख जी घर से निकले और लिखकर दे दिया।
'आप बी० ए० पास हैं, तो बंदा बीबी पास है॥'

\+ + +

अजल से वे डरें, जीने को जो अच्छा समझते है।
यहाँ हम चार दिन की जिंदगी को क्या समझते हैं॥

\+ + +

तिफ्ल में बू आए क्या, माँ बाप के अतवार की।
दूध तो डिब्बे का है, तालीम है सरकार की॥

\+ + +

जो जिसको मुनासिब था गरदूँ ने किया पैदा।
यारों के लिए ओहदे, चिड़ियों के लिए फंदे॥

\+ + +

खुदा की राह में अब रेल चल गई 'अकबर'।
जो जान देना हो, अंजन से कट मरो इक दिन॥

\+ + +

क्या गनीमत नहीं ये आजादी।
साँस लेते हैं, बात करते हैं॥

\+ + +

मेरे सैयाद की तालीम की है धूम गुलशन में।
यहाँ जो आज फँसता है, वो कल सैयाद होता है॥

\+ + +

तालीम लड़कियों की जरूरत तो है मगर।
खातूने खाना हों, वे सभा की परी न हों॥

जो इल्मों मुत्तकी हों, जो हों उनके मुंतजिम।
उस्ताद अच्छे हों, मगर 'उस्ताद जी' न हों॥

'हाली' और 'अकबर' की तुलना

'अकबर' राजनीतिक सामाजिक, दृष्टि से कौमी कवि है और 'हाली' से ही इनकी तुलना की जा सकती है। 'अकबर' ने अपनी कविताओं द्वारा हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया और स्वावलंबन को ही मुक्ति का मार्ग बताया। 'अकबर' पक्के सूफी थे। इसलिये सभी नए विचारों और रीतियों का विरोध उन्होंने अपनी कविता द्वारा किया, 'हाली' स्वीकार्य होने पर विदेशी बातों का भी समर्थन करते थे।

'अकबर' स्पष्ट भाषी नहीं थे। सरकारी नौकर होने के कारण सरकार को नाखुश भी नहीं करना चाहते, मगर 'हाली' अत्यंत स्पष्ट भाषी थे। हाँ, अकबर की तरह गरम राजनीति से 'हाली' की दिलचस्पी नहीं थी। 'अकबर' कवि ही नहीं, धार्मिक उपदेशक, सुधारक, और दार्शनिक भी थे। वह धर्म का संबंध हृदय से मानते थे। अन्य धर्मों के प्रति घृणा का भाव उनमें न था। इस बात में 'हाली' इन्हीं के समान थे।

अकबर विचारवान व विनोदप्रिय व्यक्ति थे। उनकी अपनी खास शैली है। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार है। जब कि 'हाली' ने समाज के एक ही पक्ष को अपनी कविता

का विषय बनाया—हालाँकि दूसरे पक्ष के भी वे खिलाफ न थे—तो इधर 'अकबर' ने दोनों पक्षों को खुले तौर पर अपनाया। 'हाली' के करुण और शृंगार रस की कविता लिखने पर भी 'अकबर' हास्यरस के ही मुख्यतया कवि हैं। उनके प्रौढ़ से प्रौढ़ शेरों में भी हास्य की यह झलक दिखायी देती है।

संक्षेप में, 'अकबर' और 'हाली' दोनों उर्दू—साहित्य की दो महान विभूतियाँ हैं।

सर शेख मुहम्मद 'इकबाल'

'इकबाल' का जन्म सन् १८७४ ई० में हुआ था। यह सियालकोट में पैदा हुए थे। इन्होंने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में अपने पूर्वजों के काश्मीरी ब्राह्मण होने का उल्लेख किया है। इन्होंने उच्च शिक्षा लाहौर में पाई। लंदन में इन्होंने बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करके जर्मनी से 'डाक्टर' की उपाधि प्राप्त की। इस यूरोप यात्रा का उनके जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा। इन्होंने अपनी पहली महत्वपूर्ण कविता 'हिमालिया' सन् १८६६ में लिखा थी। उन्होने उर्दू और फारसी में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। 'बाँगे दरा,' 'बाले जिबरील,' 'जर्बे कलीम' तथा 'अर्मुगाने हिजाज' नामक चार संग्रह उनके उर्दू में मिलते हैं।

'इकबाल' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलिस्ताँ हमारा॥

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्ताँ हमारा।

कुछ बात है जो हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा॥

× × ×

यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था।
सारे जहाँ को जिसने इल्मोहुनर दिया था॥
मिट्टी को जिसकी हक़ ने जर का असर दिया था।
तुर्कों का जिसने दामन हीरों से भर दिया था॥
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।

× × ×

हुस्न हो क्या खुदनुमाँ जब कोई माइल ही न हो।
शमअ को जलने से क्या मतलब, जो महफिल ही न हो॥

× × ×

लाऊँ वोह तिनके कहीं से आशियाने के लिए।
बिजलियाँ बेताब हों जिनको जलाने के लिए।
दिल में कोई इस तरह की आरजू पैदा करूँ।
लोट जाए आस्माँ मेरे मिटाने के लिए॥
पास था नाकामिए सैयाद का ऐ हमसफीर।
वरना मैं, और उड़के आता एक दाने के लिए॥

तुझे क्यों फ़िक्र है ऐ गुल, दिले सद्चाक बुलबुल की।
तू अपने पैरहन के चाक तो पहले रफू कर ले॥
तमन्ना आबरू की हो, अगर गुलजारे हस्ती में।
तो काँटों में उलझ कर जिंदगी करने की खू करले॥
सनोबर बाग में आजाद भी है, पावगिल भी है।
इन्हीं पाबंदियों में हासिल आजादी को तू करले॥
नहीं यह शानेखुद्दारी चमन से तोड़कर तुझको।
कोई दस्तार में रख ले, कोई जेबेगुल्लू करले॥

बसते हैं हिंद में जो खरीदार ही फकत।
आग भी लेके आते हैं अपने वतन से हींग॥

× × ×

शेख साहब भी तो परदे के कोई हामी नहीं।
मुफ़्त में कालिज के लड़के उनसे बदजन हो गए॥
बाज में फर्मा दिया कल आपने यह साफ-साफ।
'पर्दा आखिर किससे हो जब मर्द ही जन हो गये॥

× × ×

इंतिहा भी इसकी है, आखिर खरीदें कब तलक।
छतरियाँ, रूमाल, मफलर, पैरहन जापान से॥
अपनी गफलत की यही हालत अगर कायम रही।
आएँगे गस्साल काबुल से कफन जापान से॥

'जोश' मलिहाबादी

इनका नाम शब्बीरहसन खाँ है। यह मलिहाबाद (लखनः के निवासी हैं। इन्हें काव्य-प्रतिभा पैतृक-संपद्धि के रूप में प्र हुई है। इनके एक दर्जन से अधिक कविता-संग्रह प्रकाशित चुके हैं। इनका सबसे पहला संग्रह 'रूहे अदब' था, जो स १९२१ में प्रकाशित हुआ था। सन् १९२४ में यह कालेज छोड़ हैदराबाद में नौकरी करने गए थे। वहाँ से आने पर दिल्ली इन्होंने एक पत्र भी निकाला था। यह बहुत ही मिलनसार अं अभिमान रहित हैं।

इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

गर्दन का तौक पाँव की जंजीर काट दे।
इतनी गुलाम कौम में हिम्मत कहाँ है 'जोश'॥
अपनी तबाहियों पै कभी गौर कर सके।
इतनी जलील मुल्क को फ़ुर्सत कहाँ है 'जोश'॥
इक हर्फे गम सुनते ही लौ दे उठे दिमाग।
हिंदोस्तान में वह हरारत कहाँ है 'जोश'॥

× × ×

इन बुजदिलों के हुस्न पै शैदा किया है क्यों?
नामर्द कौम में मुझे पैदा किया है क्यों?

+ + +

मर्द वह कब है भँवर से जो उभर सकता नहीं।
हक ही जीने का नहीं उसको जो मर सकता नहीं॥

\+ + +

नौजवानी में मसाइब से डरता है मुझे।
नासिहा, नादां, यह है वोह मौसमे बर्कोशरह॥

\+ + +

आलिमेकै फोजनूँ में मारती है कहकहे।
जिंदगी जब मौत की आँखों में आँखें डालकर॥

\+ + +

जब कोई बनता है लाखों हस्तियों को मेटकर।
सुबह तारों को दबाती है उभरने के लिए॥

जौक करम नहीं है, ताबे जफा नहीं है।
बुजदिल को जिंदगी का कोई मजा नहीं है॥

\+ + +

कहते हो 'गम से परीशान हुए जाते हैं।
यह नहीं कहते कि 'इंसान हुये जाते हैं।'

\+ + +

निगाह बेनूर होकर रात का मंजर दिखाती है।
तनफ्फुस आह भरता है कजा लोरी सुनाती है॥

जईफी की यह रेशा जिससे जुंबिश में हैं सब आजा।
यह है दरअस्ल क्या ? कुछ अक्ल में यह बात आती है ?
यह है इक पालना डोरी हिलाती हैं रगें जिसकी।
यह इक झूला है जिसमें जिंदगी को नींद आती है।

'सागर' निजामी

यह मेरठ के रहनेवाले हैं। यह 'सीमाब' अकबराबादी के शिष्य हैं। इनका एक संग्रह हिंदी में भी प्रकाशित हो चुका है। प्रारंभ में यह रोमानी कविताएँ लिखते थे, लेकिन बाद में देश-भक्तिपूर्ण तथा राजनैतिक भी लिखने लगे।

'सागर' निजामी की कुछ कविताएँ यहाँ दी जा रही हैं—

रोकती ही रह गईं मासूम दूरंदेशियाँ।
उनके लब पर मेरा जिक्रेनातमाम आ ही गया॥
है जहाँ इश्को हविस को एतराफे बेकसी।
तलखिए हस्ती के कुरबाँ वोह मुकाम आ ही गया॥
जैसे सागिर से फलक जाए मचलती मौज मय।
काँपते होठों पै उनके मेरा नाम आ ही गया॥

\+ \+ \+

दिल हुस्न के हाथों से दामन को छुड़ाए है।
लेकिन कोई दामन को खींचे लिए जाए है।
क्या शै है मुहब्बत भी, कोहसार को ढाए है।
तिरतों को डुबोवे है, डूबों को तिराए है॥

जब प्रेम की नदी में तूफान सा आए है।
नैया ही नहीं, नदी हिचकोले से खाए है॥

यह तेरा तसव्वुर है या मेरी तमन्नाएँ।
दिल में कोई रह-रहके दीपक जलाए है॥

जिस सिम्त न दुनिया है, ऐदोस्त, न उकबा है।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिए जाए है॥

\+ + +

जो इक नगमा भी दिल से अंदली बेजार हो जाए।
चमन कैसा, चमन की खाक भी बेदार हो जाए॥
तेरे सर की कसम गर तू न हो मेरे तसव्वुर में।
मेरी नाजुक तबीयत पै यह दुनिया बार हो जाए॥
इसी लमहे को शायद यासकी तकमील कहते हैं।
मुहब्बत जब मिजाजे आशिकी पर बार हो जाए॥

'मजाज'

असरारुलहक़ 'मज़ाज' आजकल के प्रगतिशील कवियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्होंने शुरू-शुरू में गजलें काफी लिखी थीं। पहले इनकी कविताओं में भी रोमानीपन अधिक रहता था। परंतु बाद में उनमें प्रौढ़ता के साथ-साथ प्रगतिशील चेतना भी स्पष्ट लक्षित होने लगी। नए कवियों में इनका स्थान सर्वोपरि है।

इनकी कविताओं के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

जिंदगी क्या है गुनाहे आदम।
जिंदगी है तो गुनहगार हूँ मैं॥
कुफ्रोइलहाद से नफरत है मुझे।
और मजहब से भी बेजार हूँ मैं॥
इक लपकता हुआ शोला हूँ मैं।
एक चलती हुई तलवार हूँ मैं॥

\+ \+ \+

छुप गए वे साजे हस्ती छोड़कर।
अब तो बस आवाज ही आवाज है॥

\+ \+ \+

इश्क का जौके नजारा मुफ्त में बदनाम है।
हुस्न खुद बेताब है जल्वे दिखाने के लिए।

\+ \+ \+

तेरा शबाब अमानत है सारी दुनिया की।
तू खारजारे जहाँ में गुलाब पैदाकर॥
शराब खींची है सबने गरीब के खूँ से।
तू अब अमीर के खूँ से शराब पैदाकर॥
बहे जमीं पै जो तेरा लहू तो गम मतकर।
इसी जमीं से महकते गुलाब पैदाकर॥

तू इंकलाब की आमद का इंतजार न देख।
जो हो सके तो अभी इन्क्लाब पैदाकर॥

\+ + +

सम्हाला होश तो मरने लगे हसीनों पर।
हमें तो मौत ही आई शबाब के बदले॥

जवान की दुआ बचपन में नाहक लोग देते हैं।
यही लड़के मिटाते हैं जवानी को जवाँ होकर॥

उर्दू कविता का नया युग 'इकबाल' तथा 'जोश' आदि से प्रारंभ होता है। 'इकबाल' ने अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रवर्तित विचारधारा का अनुगमन करके उनकी परंपरा को आगे बढ़ाया। उनकी कविता सीधे जीवन से संबंध रखती है। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसी प्रकार 'जोश' भी अपना अलग महत्व रखते हैं। इन दोनों महाकवियों का परिचय पीछे के पृष्ठों में दिया जा चुका है।

'चकबस्त'

पंडित ब्रजनारायण 'चकबस्त' का नाम भी उपर्युक्त परंपरा के कवियों में उल्लेखनीय है। इनका जन्म फैजाबाद में हुआ था, लेकिन बाद में यह लखनऊ आ गए थे और वकालत करने लगे थे। यह 'इकबाल' आदि कवियों के समकालीन थे। 'चकबस्त' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

यह बेकसी भी अजब बेकसी है दुनिया में,
कोई सताए हमें हम सता नहीं सकते ॥
चिरागे कौम का रौशन है अर्श पर दिल के।
इसे हवा के फरिश्ते बुझा नहीं सकते ॥

× × ×

निफाक गबरू मुसल्माँ का यूँ मिटा आखिर।
यह बुत को भूल गए, वह खुदा को भूल गए ॥

× × ×

बागबाने यह अनोखा सितम ईजाद किया।
आशियाँ फूँक के पानी को बहुत याद किया ॥
दरे जिंदां पै लिखा है किसी दीवाने ने—
'वही आजाद है जिसने इसे आबाद किया।'
जिस पर अहबाब बहुत रोये, फकत इतना था।
घर को वीरान किया, कब्र को आबाद किया ॥
इसको नाकदरिये आलम का सिला कहते हैं।
मर चुके हम तो जमाने ने बहुत याद किया ॥

× × ×

यह गलत है कि हमें तर्जे फुगाँ याद नहीं।
अब वह आलम है कि गुंजाइशे फरियाद नहीं ॥
जब कोई जुल्म नया करते हैं, फर्माते हैं—
अगले वक्तों के हमें तर्जेसितम याद नहीं।

मुफलिसी मेरी मुहब्बत की कसौटी बन गई।
हिम्मते अहबाब के जौहर नुमायाँ हो गए॥

× × ×

मेरे अहबाब पेश आते हैं मुझसे बेवफाई से।
वफादारी में शायद कर रहे हैं इम्तहाँ मेरा॥

'सीमाब'

शेख आशिक हुसैन 'सीमाब' अकबराबादी भी उर्दू के अत्यंत ष्ठित कवियों में से हैं। इनके हजारों शिष्य हैं। सीमाब ाइटी भी उर्दू-साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य रही है। हालाँकि यह फसीहुल्मुल्क मिर्जा 'दाग' देहलवी ाष्य रहे थे, लेकिन इन्होंने उनकी काव्य-परंपरा का अनुसरण रके अपना स्वतंत्र मार्ग ग्रहण किया। 'सीमाब' की कविता के हरण नीचे दिये जा रहे हैं—

किया था जमा जाँबाजों ने जिसको जाँफरोशी से।
रुपहले चंद टुकड़ों पर वोह इज्जत बेचदी तूने।
कोई तुझ-सा भी बेगैरत जमाने में कहाँ होगा?
भरे बाजार में तकदीरे मिल्लत बेच दी तूने॥

× × ×

सच कहा था यह किसी दोस्त ने मुझसे 'सीमाब'
'अमन हो जाए अगर मुल्क में अखबार न हों।

× × ×

अपनी खिलकत को गुनाहों की सजा समझे हुये।
आदमी होने को लानत और बला समझे हुये।

× × ×

इसके दिल तक जिंदगी की रोशनी जाती नहीं।
भूलकर भी इसके ओठों पर हँसी आती नहीं।

× × ×

कहानी कहने वाले हाय, क्यों जिकरे जवानी है।
जवानी की कहानी क्या ? जवानी खुद कहानी है।
कहानी मेरी रूदादे जहाँ मालूम होती है।
जो सुनाता है उसी की दास्ताँ मालूम होती है।

× × ×

मैं हौसलों से यूँ शबेगम काट रहा हूँ।
जैसे कोई बाद इसके मुसीबत ही नहीं और ॥

× × ×

जहाँ दिल है, वहाँ वो हैं, जहाँ वो हैं वहाँ सब-कुछ।
मगर पहले मुकामे दिल समझने की जरूरत है ॥

× × ×

जो मुमकिन हो जगह दिल में न दे दर्दे मुहब्बत को।
घड़ी भर की खलिश फिर उम्र भर मालूम होती है।

'दानिश'

अहसान बिन दानिश का जन्म मेरठ में हुआ था। यह यथार्थवादी कवि हैं और इनकी कविता में काफी सजीवता है। इनकी कविताएँ हवाई कल्पना और कोरी भावुकता से युक्त नहीं हैं। यही कारण है कि उसका हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इन्हें कुछ दिन मजदूरी भी करनी पड़ी थी और राजमिस्त्री का काम करते हुये यह एक बार लाहौर के किले की दीवार से गिर पड़े थे, तथा काफी दिन बीमार रहे थे। बाद में इन्हें चौकीदार, माली और मोची का काम करने को भी मजबूर होना पड़ा था। इनके कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी एक कविता उदाहरण स्वरूप नीचे दी जा रही है—

ऐ अनीसेदश्त ! ऐ मेरे बहादुर हममआश।
शेरनी और फिर दुनाली से गिरा दो जिंदहवाश॥
लेकिन इस से मंजर मेरा दिल हुआ जाता है शक।
है अचानक मौत से इसकी मुझे बेहद कलक॥

इसका यह नाजुक शिकम यह जर्द मखमल का गुलू।
आह, यह छकड़े के पहिए पर जवानी का लहू॥

इसका नरफुरकत में इसकी बावला हो जाएगा।
हाल बच्चों का न जाने क्या से क्या हो जायगा।
भेड़िए हों, रीछ हों, चीते हों या खूँख्वार शेर।
दस्तेवादी तक बहादुर हैं नशिस्ताँ तक दिलेर॥

यह कभी आबादियों में आके गुर्राते नहीं।
यह किसानों और मजदूरों का हक खाते नहीं॥

इनसे बढ़कर वह दरिंदे हैं शकीदिल गुर्गखू।
चूस लेते हैं जो मजदूरों की शहरग का लहू॥
इनसे बढ़कर वे दरिंदे हैं कि जालिम बरमला।
घोंट देते हैं अदालत में सदाकत का गला॥

इनसे बढ़कर वे दरिंदे हैं बशक्ले राहबर।
दिन दहाड़े लूट लेते हैं जो बेवाओं के घर॥

इनसे बढ़कर वे दरिंदे हैं जो पोशिश देखकर।
अपने मुफलिस हमनशीनों से चुराते हैं नजर॥
इनसे बढ़कर वे दरिंदे हैं जो इशरत के लिये।
दाम फैलाते हैं बेवाओं की अस्मत के लिए॥

इनसे बढ़कर वे दरिंदे हैं जो जर के वास्ते।
बाइसे तकलीफ हैं नोए बशर के वास्ते॥
लाख हैवाँ हों मुहब्बत को यह खो सकते नहीं।
शेर चीते ऐसे बेइंसाफ हो सकते नहीं॥

'बर्क'

महाराज बहादुर 'बर्क' को काव्य-प्रतिमा पैतृक संपत्ति के रूप में मिली थी। यह अपने शिक्षा-काल में ही बहुत-से ऐसे शेर लिख चुके थे, जो हृदय में तीर की तरह चुभ जाते थे।

यह मुशायरों आदि में भी प्रारंभ से रुचि रखते थे और अवसर मिलने पर उसमें भाग लेते थे। इनकी भाषा में सुथरापन है और वह काफी प्रवाहपूर्ण है। उनकी नज़्मों से भारतीयता टपकती है। विदेशी-साहित्य से परिचित होते हुए भी उसके प्रभाव से अपने आपको मुक्त रखने में समर्थ हो सके। 'बर्क़' की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

हमें राहेतलब में खाक हो जाने से मतलब है।
कदम पहुँचे न पहुँचे मंजिले मकसूद पर अपना ॥

मुसाफिर हूँ अदम की राह में फिक्रे अकामत क्या।
वही मंजिल है जिस जा खत्म हो जाये सफर अपना ॥

उन्हीं को हम जहाँ में रहरवे कामिल समझते हैं।
जो हस्ती को सफर और कब्र को मंजिल समझते हैं ॥

जो हैं जाँबाज कब मुश्किल को वोह मुश्किल समझते हैं।
शनावर मौजेतूफाँखेज को साहिल समझते हैं ॥

न मिजगाँ से वफूरे जब्त ने ढलने दिया आँसू।
यह दरिया गर्क होकर रह गया अपने किनारों में ॥

आलाम से बचने को जो सूझी कोई तदबीर।
नाकामिये तकदीर भी शामिल नजर आई ॥

'हफीज'

हफीज जालंधरी का उर्दू-साहित्य के आधुनिक काल के

कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है 'शाहनामाये इस्लाम' नाम
इनकी कृति अद्भुत है। इनकी कविता मधुरता की दृष्टि
अपना जोड़ नहीं रखती। संगीतात्माकता इनकी कविता का प्रमु
गुण है। यह आज भी अपनी कविताओं से उर्दू-साहित्य
श्री-वृद्धि कर रहे हैं। हफीज जालंधरी की 'ईद का चाँद' शीर्ष
कविता नीचे दी जा रही है।

जीती रहो, मगर मुझे आता नहीं नजर।
बेटी ? कहाँ है चाँद ? मुझे भी बता किधर ?
अफसोस, अब निगाह भी कमजोर हो गई।
नेमत खुदा ने दी थी बुढ़ापे में खो गई॥
मीनारे खान काह के ऊपर ? कहाँ कहाँ ?
कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं है वहाँ कहाँ ?
हाँ, डालियों के बीच में होगा वहीं कहीं।
वोह है जहाँ पै अब्र की सुर्खी कहीं-कहीं॥
अब हो चुकी है उम्र भी नौ और आठ साल।
गुजरे तेरे खुसुर को भी गुजरे हैं आठ साल॥
तेरी तरह से मैं भी कभी हाँ जवान थी।
वोह दिन भले थे और भली अभी शान थी॥
हर इक से पहले देखती थी मैं हिलालेईद।
दस बीस दिन से रहता था हरदम खयालेईद॥
अब दिन तुम्हारे वक्त तुम्हारा तुम्हारी ईद॥
बेटी ! तुम्हारी ईद से है अब हमारी ईद॥

या रब तेरे हुजूर में हाजिर खड़ी हूँ मैं।
आसी गुनहगार तो बेशक बड़ी हूँ मैं॥
लेकिन मेरे गुनाहो खता पर निगह न कर।
या रब ! तू अपनी शाने करीमी पै रख नजर॥
अल्लाह ! मेरे चाँद - से नूरे नजर की खैर।
मेरे कमाऊ, मेरे मुसाफिर पिसर की खैर॥
अल्लाह ! मुझको घर का उजाला नसीब हो।
बेटा बहू को और मुझे पोता नसीब हो॥

'अख्तर शीरानी

अख्तर शीरानी का नाम भी उपर्युक्त काव्य-परंपरा के महत्वपूर्ण कवियों में आता है। इनके गीतों और नज्मों का प्रचार पंजाब में बहुत है। इनकी कविता का प्रधान गुण उसकी कोमलता और मधुरता है। इनकी 'मुझे बद्दुआ न दे' शीर्षक कविता नीचे दी जा रही है—

इकरार है मुझे कि गुनहगार हूँ तेरा।
मुजरिम हूँ, बेवफा हूँ, खतावार हूँ तेरा॥
लेकिन तू रहमकर मुझे ऐसी सजा न दे।
ओ नाजनीं खुदा के लिए बद्दुआ न दे॥

यह क्या कहा 'खुदा करे तेरा भी आये दिल।
मेरी ही तरह कोई तेरा भी दुखाए दिल॥

और दिल भी यूँ दुखाये कि कुदरत शफा न दे।
ओ नाजनीं ! खुदा के लिये बददुआ न दे॥

माना कि तेरे इश्क को दिल से भुला दिया।
नक्शेवफा को सीने से अपने मिटा दिया॥
लेकिन तू मेरी पिछली वफाएँ भुला न दे।
ओ नाजनीं ! खुदा के लिए बददुआ न दे।

अपने किये पै आप ही पछता रहा हूँ मैं।
तेरी निगाहे दर्द से शरमा रहा हूँ मैं॥
दिल से भुला दे, अपनी नजर से गिराने न दे।
ओ नाजनीं ! खुदा के लिए बददुआ न दे॥

'जज्बी'

मईन हुसेन 'जज्बी' प्रगतिशील काव्य-परंपरा के प्रतिभाशाली कवि हैं। यह मानवता के पुजारी हैं। सामाजिक हित के सामने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान कर देने की भावना इनकी कविता में दिखाई देती है। इनकी एक नज्म देखिये—

मरने की दुआएँ क्यों माँगूँ, जीने की तमन्ना कौन करे ?
यह दुनिया हो या वोह दुनिया, अब ख्वाहिशे दुनिया कौन करे ?
जब किश्तीसाबुत औ सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी?
अब ऐसी शकिस्ता किश्तीपर साहिल की तमन्ना कौन करे ?
जो आग लगाई थी तुमने उसको तो बुझाया अश्कों ने।
जो अश्कों ने भड़काई है, उस आग को ठंठा कौन करे ?

दुनिया ने हमें छोड़ा 'जज्बी' हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को ?
दुनिया को समझकर बैठे हैं, अब दुनिया-दुनिया कौन करे ?

साहिर 'लुधियानवी'

साहिर लुधियानवी का प्रगतिशील कवियों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कविता में कल्पना की उड़ानों के स्थान पर वास्तविकतापूर्ण जीवन-चित्रों का वर्णन मिलता है। यह समाज के विभिन्न वर्गों का पारस्परिक संघर्ष नहीं चाहते और आर्थिक स्थिति की विभिन्नताएँ उन्हें कष्टकर जान पड़ती हैं। इनकी 'फरार' शीर्षक कविता यहाँ दी जा रही है—

अपने माजी के तसव्वुर से हिरासाँ मैं,
अपने गुजरे हुए ऐय्याम नफरत है मुझे।
अपनी बेकार तमन्नाओं पै शरमिंदा हूँ,
अपनी बेसूद उमीदों पै नदामत है मुझे।
मेरे माजी को अँधेरे में दबा रहने दो,
मेरा माजी मेरी जिल्लत के सिवा कुछ भी नहीं।

मेरी उम्मीदों का हासिल, मेरी काविश का सिला,
एक बेनाम अजीयत के सिवा कुछ भी नहीं।
कितनी बेकार उम्मीदों का सहारा लेकर,
मैंने ईवान सजाए थे किसी की खातिर।
कितनी बेरब्त तमन्नाओं के मुबहम खाके,
अपने ख्वाबों में बसाए थे किसी की खातिर।

मुझसे अब मेरी मुहब्बत के अफसाने न कहो,
मुझको कहने दो कि मैंने उन्हें चाहा ही नहीं।
और वे मस्त निगाहें जो मुझे भूल गयीं,
मैंने उन मस्त निगाहों को सराहा ही नहीं।
मुझको कहने दो कि मैं आज भी जी सकता हूँ,
इश्क नाकाम सही, जिंदगी नाकाम नहीं।
उन्हें अपनाने की ख्वाहिश, उन्हें पाने की तलब,
शौके बेकार सही, सईएगम अंजाम नहीं।
वही गेसू, वही नजरें, वही आरिज, वही जिस्म,
मैं जो चाहूँ तो मुझे और भी मिल सकते हैं।
वे कँवल जिनको कभी उनके लिए खिलना था,
उनकी नजरों से बहुत दूर भी खिल सकते हैं।

जाकिर हुसेन 'साकिब'

जाकिर हुसेन 'साकिब' का जन्म आगरे में हुआ था। इनकी विचार-शैली तथा कल्पना बहुत कुछ 'गालिब' जैसी ही है। इसीलिए इन्हें 'जाँनशीन मीर-ओ-गालिब' कहा जाता है। यह बचपन से ही शायरी करते थे। बाद में तो मुशायरा और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा इन्हें काफी यश प्राप्त हुआ, 'साहिब' की कविता के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

मेरी दास्तानेगम को वोह गलत समझ रहे हैं।
कुछ उन्हीं की बात बनती अगर एतबार होता ।।

वही रात मेरी वही रात उनकी।
कहीं बढ़ गई है कहीं घट गई है॥

× × ×

जो अच्छा कर नहीं सकते तो क्यों तड़पूँ मैं बिस्तर पर।
दुआ देना नहीं आता तो सीखो बददुआ देना॥

× × ×

पूछा न जिंदगी में यूँ तो किसी ने आकर।
मरने के बाद जो था, वह मुझको पूछता था॥

× × ×

लूटने वाले हमारी नींद के।
रात भर किस चैन से सोते रहे॥

× × ×

जान हाजिर है लिए जाओ अमानत अपनी।
फिर खुदा जाने, रहे या न रहे, होश मुझे॥

मौलाना फजुलुलहसन 'हसरत'

मौलाना फजुलुलहसन 'हसरत' मोहानी की कविता प्रेम की कविता है। इनका जन्म उन्नाव में हुआ था। यह विद्यार्थी-जीवन में ही कविता करने लगे थे। इन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। इन्होंने असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था।

राजनैतिक क्षेत्रों में भी यह काफी प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

वोह शर्माए बैठे हैं गर्दन झुकाए।
गजब हो गया इक नजर देख लेना॥
न भूलेगा वह वक्ते रुखसत किसी का।
मुझे मुड़के फिर इक नजर देख लेना।

× × ×

सुनके कासिद से मेरा हाल, कहा तो यह कहा।
है वह बदनाम, कहीं हमको भी रुसवा न करे॥

× × ×

कहीं वोह आके मिटा दें न इंतजार का लुत्फ।
कहीं कबूल न हो जाए इल्तिजा मेरी॥

× × ×

वोह आईने में देख रहे थे बहारे हुस्न।
आया मेरा ख्याल, तो शर्मा के रह गए॥

× × ×

ग़मे आरजू का 'हसरत'! सबब और क्या बताऊँ?
मेरी हिम्मतों की पस्ती, मेरे शौक की बलंदी॥

× × ×

वोह् चुप हो गए मुझसे 'क्या' कहते कहते।
कि दिल रह गया मुद्दआ कहते कहते॥

× × ×

हम हाल उन्हें यूँ दिल का सुनाने में लगे हैं।
कुछ कहते नहीं, पाँव दबाने में लगे हैं॥

शौकतअली खाँ 'फानी'

शौकतअली खाँ 'फानी' का जन्म सन् १८७६ में हुआ था। इन्होंने अपना पहला दीवान बीस वर्ष की आयु में ही पूरा कर लिया था, जो उपलब्ध नहीं है। इसके छह-सात वर्ष बाद इन्होंने दूसरा दीवान भी तैयार किया और वह भी नष्ट हो गया। इससे इनके हृदय को बहुत चोट पहुँची। इनका सारा जीवन कष्टपूर्ण रहा। इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

वो है मुख्तार सजा कि जजा दे 'फानी'।
दो घड़ी होश में आने के गुनहगार हैं हम॥

× × ×

दुनिया में हाले आमदोरफ्ते बशर न पूछे।
बेअख्तियार आके रहा, बेखबर गया॥

× × ×

मेरी हविस को ऐशे दो आलम भी था कुबूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुखा हुआ॥

खफा न हो तो यह पूछूँ कि तेरी जान से दूर।
जो तेरे हिज्र में जीता है, मर भी सकता है ?

× × ×

इसी को तुम मगर ऐ अहले दुनिया ! जान कहते हो ?
वोह काँटा है जो मेरी रग-रग में रह-रहकर खटकता है ॥

× × ×

जिक्र जब छिड़ गया कयामत का।
बात पहुँची तेरी जवानी तक ॥

× × ×

इक फसाना सुन गए इक कह गए।
मैं जो रोया मुस्कराकर रह गए ॥

× × ×

दुनिया मेरी बला जाने मँहगी है या सस्ती है।
मौत मिले तो मुफ्त न लूँ, हस्ती की क्या हस्ती है ॥

सिकंदरअली 'जिगर' मुरादाबादी

सिकंदरअली 'जिगर' मुरादाबादी का जन्म सन् १८६० में हुई थी। इनकी कविता का मुख्य विषय प्रायः प्रेम ही है। इनकी गजलें बहुत ही तीखी और हृदय पर असर करने वाली हैं। इनकी बहुत-सी गजलें प्रसिद्ध हैं और इन्हें विशेषरूप से गजलें

लिखने में ही अधिक सफलता मिली है इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

तेरी आँखों का कुछ कुसूर नहीं।
हाँ, मुझी को खराब होना था॥

× × ×

जो पड़ी दिल पै सह गए लेकिन।
एक नाजुक सी बात ने मारा॥

× × ×

बताओ, क्या तुम्हारे दिल पै गुजरे
अगर कोई तुम्हीं-सा बेवफा हो॥

× × ×

वे आए है, ऐ दिल, तेरे कहने का यकीं है।
लेकिन मैं करूँ क्या? मुझे फुर्सत ही नहीं है॥

× × ×

मेरे गम खानए मुसीबत की।
चाँदनी भी स्याह होती है॥

× × ×

हम इश्क के मारों का इतना ही फसाना है।
रोने को नहीं कोई, हँसने को जमाना है॥

रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी

रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी के पिता जी भी शायरी करते थे। इन्हें काँग्रेस-आंदोलन के संबंध में जेल भी जाना पड़ा। इन्होंने प्रारंभ में गज़ल लिखना शुरू किया था। इनकी कुछ कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

न समझने की हैं बातें न यह समझाने की।
जिंदगी उचटी हुई नींद है दीवाने की॥

× × ×

पर्दयेयास में उम्मीद ने करवट बदली।
शबेगम तुझमें कमी थी इसी अफसाने की॥

× × ×

न कोई वादा न कोई यकीं, न कोई उम्मीद।
मगर हमें तो तेरा इंतजार करना था॥

× × ×

मैं हूँ, दिल है, तनहाई है।
तुम भी जो होते अच्छा होता।

× × ×

थी यूँ तो शामे हिज्र, पिछली रात को।
वह दर्द उठा 'फिराक' कि मैं मुस्करा दिया॥

जो जहर हलाल है, अमृत भी वही लेकिन।
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के॥

उर्दू का नया गद्य साहित्य

यह कहा जा सकता है कि सर सैयदअहमद खाँ के समय से आधुनिक उर्दू गद्य ने नए रूप ग्रहण किए। उनके समय में मीर मेंहदी अली, मौलवी चिरागअली, शम्शुल उल्मा मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आजाद' तथा मौलाना नजीर अहमद आदि बहुत से प्रसिद्ध गद्य-लेखक थे, जिन्होंने अनेक पुस्तकों की स्वयं रचना की, तथा नए लेखकों को इस दिशा में प्रेरित किया एवं प्रोत्साहन भी दिया। मौलवी जकाउल्ला, मौलवी सैयद अहमद तथा शिबली नोमानी आदि लेखक भी इन्हीं लोगों के समकालीन थे।

उपर्युक्त लेखकों के बाद के लेखकों में इमामबख्श सहबाई, मौलवी गुलाम इमाम शहीद, गुलाम गौस बेखबर, शम्शुल उल्मा सैयदअली बिलग्रामी, सैयद हुसेन बिलग्रामी, मौलवी अजीज मिर्जा, मौलवी अब्दुलहक, वहीदुद्दीन सलीम, शेख अब्दुल कादिर, पं० मनोहरलाल जुत्शी, मुंशी दयानरायन निगम, लाला श्रीराम आदि का नाम उल्लेखनीय है। उपर्युक्त सभी लेखक उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम काल के साहित्य-सेवियों में हैं।

लेकिन वास्तव में वर्तमान उर्दू गद्य साहित्य की उन्नति

बीसवीं शताब्दी में ही हुई। यों इससे पहले भी रजबअली बेग 'सुरूर,' मिर्जा मच्छूबेग 'आशिक,' नवाब सैयद मुहम्मद आजाद, पं० रतननाथ 'सरशार', मौलवी अब्दुल हलीम,, मिर्जा मुहम्मद हादी 'रुसवा,' हकीम मुहम्मदअली 'तबीबे', मौलाना रशीदुल खैरी, नियाज फतेहपुरी तथा ख्वाजा हसन निजामी आदि प्रसिद्ध लेखक हो गये थे, जिनकी कृतियाँ स्थायी साहित्य की कोटि में आती हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रेमचंद ने उर्दू साहित्य के क्षेत्र में किया। इनकी उर्दू में प्रकाशित कहानियों का पहला संग्रह 'सोजे वतन' के नाम से प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक सरकार द्वारा जब्त करली गई तथा इसकी सभी प्रतियाँ जलवा दी गईं। सन् १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद ने सभापति पद से बोलते हुए कहा था—'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आभा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं...............।

प्रेमचंद के समकालीन तथा उनके परवर्ती कथाकारों में 'सुदर्शन', अली अब्बास हुसेनी, अहमद अली, सआदत हसन मंटो, राजेंद्रसिंह, इस्मत चुगताई, उपेंद्रनाथ 'अश्क', अख्तर

अंसारी, कृष्ण चंदर, अख्तर हुसैन रायपुरी, हयात उल्ला अंसारी अहमद नदीम कासिमी, बलवंतसिंह, ख्वाजा अहमद अब्बास, रजिया सज्जाद जहीर, देवेंद्र इस्सर तथा हंसराज रहबर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त लेखकों में प्रेमचंद द्वारा लिखित 'सोजे वतन' 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम बत्तीसी', 'प्रेम चालीसी', 'वारदात', 'जादेशाह', 'आखिरी तोहफा' तथा 'देहात के अफसाने' कृष्णचंद द्वारा लिखित 'जिंदगी के मोड़ पर', 'गिर्जन की एक शाम', 'कालो भंगो', 'बालकोनी', 'अन्नदाता' तथा 'तीन गुंडे', मंटो द्वारा लिखित 'नया कानून', 'ठंडा गोश्त', 'सर्कंडों के पीछे', 'सड़क के किनारे' तथा नया कानून 'हतक', 'सुदर्शन' द्वारा लिखित 'चंदन', 'बहारिस्तान', 'औरत की मुहब्बत', तथा 'बेगुनाह मुजरिम', अली अब्बास हुसैनी द्वारा लिखित 'रफीके तनहाई', 'शायद कि बहार आई', तथा 'बासी फूल', ख्वाजा अहमद अब्बास द्वारा लिखित 'पाँव के फल', 'जाफरान के फूल', 'सरदार जी', 'रुपया आना पाई' राजेंद्रसिंह वेदी द्वारा लिखित 'दाना बदाम', 'ग्रहण' तथा 'तिलछट', अहमदअली द्वारा लिखित 'शोले', 'हमारी गली' तथा 'कैदखाना' इस्मत चुगताई द्वारा लिखित 'कलियाँ', 'चोटें', 'छुई मुई' तथा 'एक बात', 'अश्क' द्वारा लिखित 'कोंपल,' 'डाची' तथा 'चट्टान', अख्तर अंसारी द्वारा लिखित 'अंधी दुनिया' तथा 'नाजो,' अख्तर हुसैन रामपुरी

द्वारा लिखित 'जिंदगी का मेला', हयात उल्ला अंसारी द्वारा लिखित 'भरे बाजार में', आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

नए उपन्यासकारों में मंजर सलीम का नाम उल्लेखनीय है। उनके तीन उपन्यास 'आगोश', 'खालिश', तथा 'नुमाइश' प्रकाशित हो चुके हैं।

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त शौकत थानवी, कन्हैयालाल कपूर, मोहन राकेश, ए० हमीद, अहमद शुजा, आगाहश्र, कुरैशी अनवर जलाल, इशरत रहमानी, डाक्टर अब्दुल अलीम, सज्जाद जहीर, कलीम उद्दीन, आले अहमद सुरूर, डा० एहतिशाम हुसैन आदि अन्य प्रसिद्ध लेखक हैं, जो कथा-साहित्य, नाटक तथा आलोचना आदि क्षेत्रों में कार्य करके उर्दू साहित्य की सेवा कर रहे हैं।

—:(❀):—